CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नं० ४२२

के उपदेश से की। और भी अनेक धार्मिक कार्य्य उक्त सेठजी के हाथ से आपने कराये। भारतवर्षीय दिगम्बर-जैन-महा-विद्यालय की स्थापना भी आपके ही उद्योग का फल है। महासभा के प्रधान संस्थापकों में आपका भी नाम है। आप कई वर्षों तक महा-सभा के शिक्षा-विभाग के मन्त्री रहे।

संवत् १९५८ में आप ग्वालियर की रियासत के मुरेना नामक क़सबे को चले आये। वहाँ का जल-वायु आपको स्वास्थ्यदायक हुआ। इसलिए आपने वहीं आढ़त की दूकान करली, जो आज कल अच्छी तरह चल रही है। संवत् १९६६ में, मुरेना में, "माधव-काटन-जिनिंग कम्पनी" आप ही के विशेष उद्योग से खुली। उसके आप डाइरेक्टर हुए।

आपकी योग्यता, सादगी, सुशीलता, स्पष्टवादिता आदि गुणों से सभी लोग आपसे हार्दिक प्रेम प्रकट करते थे। मुरेना में जो कोई सूबा आता आपसे परिचय प्राप्त किये बिना न जाता। ग्वालियर की रियासत में सूबे का पद कमिश्नर के पद की बराबरी का है। सूबा साहब मुन्नालालजी मिश्र, एम० ए०, मुरेना की तिजारत और कृषि के विषय में आपसे बहुधा सलाह लिया करते थे। आपने मुरेना की म्यूनिसिपैलिटी का बहुत कुछ सुधार कराया। आप कई वर्षों तक वहाँ के आनरेरी मैजिस्ट्रेट रहे। उन्हीं दिनों में आपने वहाँ स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार किया। कालान्तर में व्यापारार्थ आप क़सबा भिण्ड को चले गये। अतएव आपने उक्त पद छोड़ दिया। कुछ ही समय बाद आप फिर मुरेना लौट आये। तब, फिर भी, आपसे वह पद स्वीकार करने के लिए कहा गया। पर आपने इनकार कर दिया। परन्तु ऐसे सुयोग्य सहायक को राज्य कब छोड़ने वाला था। उसने आपको पञ्चबोर्ड का प्रधान मेम्बर नियत किया। आप ने भी बड़ी योग्यता के साथ अनेक मामलों की छान-बीन की। बेचारे जो कृषक महाजनों की बेढब सूद-ख़ोरी से सताये जाते थे उन्हें आपने उस कष्ट से मुक्त करा दिया।

मुरेना में पण्डितजी ने एक छोटी सी पाठशाला खोली। अनेक छात्र छात्रवृत्ति का स्वतन्त्र प्रबन्ध करके वहाँ जाते और पण्डितजी उन्हें ४-५ घण्टे रोज़ स्वयं पढ़ाते थे। कई वर्षों तक पण्डितजी की पाठशाला इसी रूप में चलती रही। परन्तु आज ८ वर्षों से वह पण्डितजी की कृपा से "सिद्धान्त-विद्यालय" के नाम से बड़े विशाल रूप में चल रही है। उसकी निज की इमारत बन गई है। विद्यालय का ख़र्च आज कल सात सौ रुपया मासिक है। उसमें १२ अध्यापक हैं। उसके अधीन एक बोर्डिङ्गहौस भी है, जिस में नाना देशीय ६० छात्र रहते हैं। जब से पण्डितजी ने विद्यालय के संस्कृत और हिन्दी, ये दो विभाग किये तब से मुरेना-निवासी बालकों का बहुत हित हुआ। हिन्दी-विभाग में मिडिल क्लास तक अँगरेज़ी पढ़ाने का भी प्रबन्ध है। संस्कृत विभाग में आचार्य्य-परीक्षा तक की शिक्षा दी जाती है। ग्वालियर-राज्य से उक्त विद्यालय को ३०) मासिक सहायता मिलती है। काशी की आचार्य्य तथा तीर्थपरीक्षाओं में उत्तीर्ण कतिपय छात्र ६-७ वर्षों तक पण्डितजी की शिष्यता में पढ़ चुके हैं। आप २०-२५ ऐसे विद्वान् बना गये हैं जो जैन समाज में गण्य-मान्य समझे जाते हैं। इन पंक्तियों का लेखक भी, काशी से आकर, ६ वर्ष आपकी शिष्यता में पढ़कर, २ वर्ष अध्यापकी की हैसियत से उक्त विद्यालय की सेवा कर चुका है। पण्डितजी का अधिकांश समय इसी विद्यालय की सेवा में जाता था। २-३ वर्षों से तो आपने दूकान-सम्बन्धी कार्यों को प्रायः छोड़ ही सा दिया था। मुनीम लोग जब आप से सलाह लेते तब आप कह दिया करते थे कि बाज़ार देख कर काम करो।

यद्यपि जैन-समाज में अब भी अनेक प्रौढ़ विद्वान् हैं, परन्तु पण्डित गोपालदासजी के सदृश तत्त्ववेत्ता के बिना जैन-समाज-रूपी मन्दिर शिखरवि-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हीन हो गया है। विद्वानों के विवादस्थ प्रश्नों के सन्तोष-जनक उत्तर देने की आप में अपूर्व शक्ति थी। अनेक बी० ए० और एम० ए० भी अटपटे प्रश्नों के युक्ति-पूर्ण उत्तर पाकर आपके पाण्डित्य की हृदय से प्रशंसा करते थे।

पण्डितजी जैसे उद्भट विद्वान् थे वैसे ही वक्ता भी थे। कलकत्ते में आपके विद्वत्ता-सूचक गम्भीर व्याख्यानों को सुन कर सर आशुतोष मुकर्जी, सर गुरुदास बैनर्जी, विद्याभूषण सतीशचन्द्र पी० एच०-डी, महामहोपाध्याय प्रथमनाथ तर्करत्न आदि विद्वानों ने आपकी विद्वत्ता की हार्दिक प्रशंसा की। बम्बई की प्रान्तिक सभा और तत्त्व-प्रकाशिनी सभा के सिवा कलकत्ते के संस्कृत-कालेज से भी आपको न्याय-वाचस्पति की उपाधि मिली। सन् १९१२ में अजमेर के आर्य्यसमाज के साथ मौखिक तथा लिखित शास्त्रार्थ में विद्वान् लोगों ने आप ही के पक्ष को युक्तिपूर्ण और प्रबल बताया। उक्त दोनों शास्त्रार्थों की समालोचना सरस्वती में प्रकाशित हो चुकी है।

सन् १९१० में जैनियों में दस्सों-बीसों का झगड़ा उठा। बीसा लोग दस्सों को पूजन का अधिकारी न बतलाते थे। पण्डितजी इसके विरुद्ध खड़े हुए। आपने अनेक शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा दस्सों को पूजन का अधिकारी सिद्ध किया। अदालत में आपने गवाही भी दी। उस समय समाज में बड़ा आन्दोलन मचा। तब से आपका सम्मान और भी बढ़ गया।

पण्डितजी ने कई ग्रन्थों की स्वतन्त्र रचना की। उनमें से जैन-सिद्धान्त-दर्पण और जैन-सिद्धान्त-प्रवेशिका ये दो ग्रन्थ बड़े महत्त्व के हैं। उक्त दोनों ग्रन्थों से विद्वानों ने बहुत लाभ उठाया है। पण्डितजी के लिखे हुए ट्रेक्टों (छोटी पुस्तकों) में सार्व-धर्म और भूगोल-मीमांसा ये भी देखने लायक़ हैं।

सबसे बड़ा गुण आपमें निःस्पृहता का था। यदि अन्य कितने ही विद्वानों की तरह आप अपने व्याख्यानों का पुरस्कार लेना शुरू कर देते तो अमीर हो जाते। परन्तु आपने किसी से एक पैसा भी ग्रहण नहीं किया। एक बार छतरपुर-नरेश ने शङ्काओं के निवारणार्थ आपको अपने यहाँ बुलाया। आप वहाँ अपनी शिष्यमण्डली सहित १५ दिन रहे। महाराजा साहब ने आपकी हृदय से प्रशंसा की और दो गाँव लेने तथा वहाँ रहने के लिए आग्रह भी किया। परन्तु पण्डितजी ने उपेक्षा प्रकट की और केवल एक नारियल की भेट स्वीकार करके आप महाराजा साहब से बिदा हो आये।

भारत के उत्तरी प्रान्त के सिवा दक्षिणी प्रान्त में भी पण्डितजी पर लोगों की बड़ी श्रद्धा थी। सन् १९१० में आप महाराष्ट्रीय सभा के सभापति बनाये गये थे। उस समय सभापति-रूप से आपका जो भाषण हुआ था वह महत्त्वपूर्ण था। बहुत से लोग आपको जैन-तिलक कह कर पुकारते थे।

कुछ ही दिन पहले पण्डितजी की बीमारी के समाचार समाचार-पत्रों द्वारा सुन कर अखिल जैन-समाज विकल हो उठा था। तथापि शीघ्र ही उनकी दशा अच्छी सुन कर हर्ष भी मनाने लगा था। परन्तु हा खेद! वह हर्ष केवल गुल होने वाले दीपक की तरह ही सिद्ध हुआ। उसके थोड़े ही दिनों बाद दुर्दमनीय दुष्ट काल की कुटिल कृपा से गत चैत्र-कृष्ण पञ्चमी को प्रातःकाल, ७ बजे, विद्वच्छिरोमणि पण्डित गोपालदासजी, अपनी कीर्तिमूर्त्ति विद्यालय को जैन-जनता की शरण में छोड़ कर, स्वर्गीय रत्न बन गये। हा! एक अमूल्य रत्न के उठ जाने से आज समग्र जैन-जनता और उस रत्न के गुणों से परिचित जन-समूह शोक से व्याकुल हो रहा है।

कई जगह पण्डितजी के नाम से पुस्तकालय और समाचारपत्र-भवन खुल चुके हैं। आगरे में एक गोपाल-विद्यालय भी खुला है। पण्डितजी का सबसे बड़ा स्मारक उनका स्थापित किया हुआ विद्यालय ही है, जिसको समाजसेवी पण्डित धन्नालालजी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नं० ४२२

तथा कई अन्य महोदय शीघ्र ही गोपालदास-सिद्धान्त-विद्यालय के नाम से परिवर्त्तित करने वाले हैं।

पण्डितजी के एक पुत्र है, जो पिता के ही समान स्वतन्त्र-स्वभाव और सदाचारी है। एक पौत्र भी है। उनकी विधवा पत्नी भी विद्यमान है।

मक्खनलाल

सहृदय शत्रु।

परन्तु सुजानसिंह की समस्त चेष्टायें निष्फल हुईं। उसकी प्रार्थनाओं, उसके करुणा-मय वचनों तथा उसकी दीन-हीन दशा का प्रभाव पाषाण-हृदय बलदेवसिंह पर कुछ भी न पड़ा। उन्होंने पहले तो उसे बेदख़ल करके उसकी जीविका का द्वार बन्द कर दिया। तत्पश्चात् उसके एक छोटे से बाग़ पर भी बलपूर्वक अपना अधिकार जमा लिया। इस बाग़ में सात आठ आम के और चार पाँच महुवे के वृक्ष थे; इसे बेचारे सुजान ने अपना ख़ून-पानी एक करके लगाया था। परन्तु अभी वह अपने परिश्रम के फल-रूप में उसके फलों का रसास्वादन तक न करने पाया था, क्योंकि वह बाग़ इसी वर्ष प्रथम बार फलने वाला था।

हा! आज सुजान के दुःखों का ठिकाना नहीं; भूमि तो चली ही गई, साथ ही उसका प्राणों से भी प्यारा बाग़ भी छिन गया। किन्तु एक धनाढ्य ज़मींदार के सामने वह बेचारा कर ही क्या सकता था! इतना रुपया पास नहीं कि अदालत की शरण ले। यदि इस कार्य्य के लिए ऋण लेता है तो वही कहावत होती है कि कुँवे से बचा तो खत्ती में गिरा। इसके अतिरिक्त, अदालत की डाली हुई ग्रन्थियाँ सहज में नहीं सुलझतीं। ऋण लेकर मुक़द्दमा चलावे, वकीलों के नख़रे सहे, अमलों की झिड़कियाँ सुने, रात-दिन दौड़-धूप करे, एक पाँव घर में, एक कचहरी में रक्खे, फिर भी यही संशय कि देखो ऊँट किस करवट बैठे—ना-भाई शेर-बकरी की लड़ाई है। बलदेवसिंह का क्या बिगड़ेगा, हज़ार पाँच सौ ख़र्च हो जायँगे तो हो जायँगे। एक फ़सल की आमदनी न सही। परन्तु सुजान बेचारा तो मर ही मिटेगा; यह ऋण-राक्षस सूद-रूपी अण्डे-बच्चे देकर अपना वंश बढ़ाता ही रहेगा। यही सब सोच समझ कर सुजान कलेजा थाम बैठ रहा।

किन्तु इतना आत्म-त्याग करने पर भी उसे शान्ति न मिली। एक दिन बलदेवसिंह ने उसे बुला कर कहा—क्यों रे! वह पचास रुपये कब देगा?

सुजान ने चकरा कर पूछा—कौन से पचास रुपये, मालिक?

बलदेव—हूँ—अब पूछता है कौन से पचास रुपये! जब लिये थे तब? तब भी ऐसी ही बातें करता था?

सुजान—मालिक, मुझे नहीं मालूम कौन से पचास रुपये! मैंने कब लिये थे!

बलदेव—यह बहुत ठीक! सुना करते थे कि क़र्ज़ कभी नहीं भूलता। किन्तु आज यह कहावत झूठी हो गई। (अपने मुनीम से) रामचरण! ज़रा देखो तो खाता। इसके नाम पचास रुपये किस मिती में हैं?

बड़ी गम्भीरता से रामचरण ने खाता खोला और चार छः पृष्ठ इधर उधर उलट कर बोले मिती——में इनके नाम पचास रुपये लिखे हैं।

सुजान की आँखों तले अँधेरा छा गया। भविष्य देख कर हृदय काँपने लगा। लड़खड़ाती हुई जिह्वा से वह बोला—मालिक मैंने तो कभी रुपये नहीं लिये। न जाने...।

एक दूसरे असामी जो ठाकुर साहब के पास बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे, बोल उठे—अरे भाई, तुम बड़े भुलक्कड़ हो! मेरे सामने ही की तो बात है। तुम दौड़े हुए आये थे और न जाने क्या आवश्यकता बता कर.....देखो..... याद नहीं आता.....ख़ैर, कोई बड़ी आवश्यकता बताई थी और पचास रुपये ले गये थे!

ठाकुर साहब की बग़ल में पटवारी देवता भी स्याहा खोले कुछ लिख पढ़ रहे थे। यह कथोपकथन सुन कर उन्होंने भी कान फटफटा डाले और बोले—हाँ—हाँ ख़ूब याद आया। मैं भी उस समय बैठा था। ये पचास रुपये ले गये थे; परन्तु ये घबराये हुए बहुत थे; इसी कारण कदाचित् भूल गये हों।

लीजिए, दो गरमागरम गवाह भी उपस्थित हैं। अब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुजान से यह कहते बन न पड़ा कि मैं नहीं ले गया। वह हाथ जोड़ कर बोला—यदि आप लोगों के सामने की बात है तो मैं अवश्य ले गया हूँगा; किन्तु मुझे याद नहीं।

बलदेव—ख़ैर हमें तुम्हारी याद से काम नहीं, हमें तो अपने रुपये चाहिए। (रामचरण से) हाँ, मुनीमजी, ज़रा ब्याज भी जोड़ डालिए। परन्तु दो ही पैसे के हिसाब से लगाना। यह ग़रीब आदमी है। इसे अधिक सताना ठीक नहीं।

मुनीमजी ने झट क़लम उठा कर काग़ज़ पर रगड़ना आरम्भ किया और दो मिनिट बाद बोले—एक बरस तीन महीने का ब्याज २३।≡) हुआ।

बलदेव—लो भई, ५०) असल के और २३।≡) ब्याज के, कुल ७३।≡) हुए। अब यह बताओ, यह कब दोगे?

सुजान पर वज्रपात हुआ। वह नहीं सोच सका कि क्या उत्तर दे। चुपचाप खड़ा ठाकुर का मुँह ताकता रहा। यह देख कर पटवारीजी बोले—अरे भई, केवल ७३।≡) की तो बात है, लाकर देदो। इसमें सोच-विचार काहे का है!

अब सुजान काँपता हुआ बोला—मालिक रुपये तो अभी मेरे पास हैं नहीं, भूमि और बाग़ था। वह भी आपने ले लिया। मजूरी करके मैं अपना पेट पालता हूँ। रुपये कहाँ से लाऊँ?

बलदेव—यह कहने से काम न चलेगा, रुपये का प्रबन्ध करो।

सुजान—मैं सच कहता हूँ, अभी मेरे पास रुपये नहीं हैं।

एक साहब बोल उठे—तुम्हारी दो भैंसें भी तो हैं; न हों उन्हीं को बेच कर रुपये दे दो। जब सुभीता हो, फिर ले लेना।

ठाकुर साहब बोले—बेचने की क्या आवश्यकता है। रुपये के बदले हम उन्हीं को ले लेंगे। भला, दोनों भैंसें कितने की होंगी?

सुजान के कुछ कहने के पूर्व ही पटवारीराम बोल उठे—मेरी निगाह में तो दोनों कोई सत्तर रुपये की होंगी।

(वाह रे मेरे शेर! क्या बाँकी निगाह है और क्या ठीक हिसाब लगा कर दाम बताये हैं! दोनों भैंसे भी पल्ले पड़े और ३।≡) सुजान पर लदे ही रहें।)

ठाकुर साहब—ख़ैर हम दोनों भैंसें ७३।≡) में लगा लेंगे। हम तो इसकी भलाई ही चाहते हैं।

दूसरे साहब हँस कर बोले—लो भई, अब क्या चाहते हो? तुम्हारे मन की हो गई। सुजानसिंह भीतर की साँस भीतर दबा कर बोला—मालिक मैंने तो दोनों सवा सौ को ली थीं और अब तो वे डेढ़ सौ की हैं।

सुजान की बात ने सबका पेट गुदगुदा दिया। बलदेवसिंह हँसते हुए बोले—ख़ैर भाई, तुम्हारी दो सौ की सही, हमें क्या हमें तो अपने ७३।≡) चाहिए।

अच्छा साहब, तीन चार दिन में दे दूँगा—कह कर सुजान ने उस समय अपना पिण्ड छुड़ाया।

किन्तु समय का स्रोत इन तीन चार दिनों को पलक झपकते झपकते बहा ले गया और सुजान रुपयों का प्रबन्ध न कर सका। और करता कहाँ से? सब जान गये थे कि ठाकुर साहब आज कल सुजान के शत्रु हो रहे हैं। इस कारण भय के मारे किसी ने उधार भी न दिये।

अब सुजान रघुवीरसिंह के पास गया। वे पास ही के गाँव के ज़मींदार थे। उनमें और बलदेवसिंह में विकट शत्रुता थी। इन्हीं रघुवीरसिंह की ओर से बलदेवसिंह के विरुद्ध एक सच्चे मुआमिले में सुजान ने सच्ची गवाही दी थी और इसी कारण बलदेवसिंह उस पर अपनी क्रोधाग्नि ठण्डी कर रहे थे।

सुजान रघुवीरसिंह के पास गया तो, परन्तु दुर्भाग्य उसके आगे आगे चल रहा था। रघुवीरसिंह मिले ही नहीं। कहीं बाहर गये हुए थे। अब सुजान से इसके अतिरिक्त और कुछ न बन पड़ा कि बलदेवसिंह के चरण पकड़ कर कुछ दिनों का अधिक अवकाश माँगे। परन्तु बलदेवसिंह की हार्दिक इच्छा तो उसे मिट्टी में मिलाने की थी। अतएव उन्होंने अवकाश देना अस्वीकार किया। अपने आदमी भेज कर दोनों भैंसें खुलवा मँगाईं और सुजान को मार पीट कर निकाल दिया।

संसार कहता है कि हर बात की सीमा होती है। इस लिए हमको भी मानना पड़ेगा कि सुजानसिंह की सहनशक्ति भी कोई सीमा रखती थी। जान पड़ता है, बलदेवसिंह के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अत्याचार उस सीमा के बाहर निकल गये; क्योंकि उसी दिन सुजान ने प्रतिज्ञा की—कि मैं आज से बलदेवसिंह का शत्रु हूँ और, अवसर मिलने पर, अवश्य इसकी हत्या करूँगा।

(२)

सुजान को बलदेवसिंह का गाँव छोड़े दो महीने बीत चुके हैं। अब वह सपरिवार रघुवीरसिंह के गाँव में रहता है। परन्तु जिस दिन वह इस गाँव में आया उसी दिन से कुछ विक्षिप्त सा हो गया है। न खाने का कोई समय, न नहाने का। दिन भर काम, रात भर काम! जङ्गलों में लाठी लिये घूमता रहता है। उसके परिवार का पालन रघुवीरसिंह करते हैं। सुजानसिंह को अपने गाँव में आश्रय देने के कारण रघुवीरसिंह की शत्रुता बलदेवसिंह से पहले से कहीं अधिक हो गई है। अब एक दूसरे की जान के ग्राहक हैं।

एक दिन रघुवीरसिंह के एक नौकर ने आकर उनसे कहा—मालिक आज दाँव लगा है; जो कुछ करना हो कर लीजिए।

रघुवीरसिंह ने विस्मित होकर पूछा—कैसा दाँव?

नौकर—आज रात को बलदेवसिंह अपने लड़के के साथ न्योते जायँगे और यह भी पता लगा है कि रात को आठ बजे केवल चार आदमियों को साथ लेकर चलने की ठहरी है।

रघुवीर—परन्तु ऐसी बात तो उन्हें गुप्त रखनी थी।

नौकर—अत्यन्त गुप्त रक्खी है। उनके कुछ नौकरों को छोड़ कर और कोई नहीं जानता।

रघुवीर—फिर तुम्हें कैसे मालूम हुई?

नौकर—जो चार आदमी उनके साथ जायँगे उन्हों में से एक के द्वारा। वह मेरा परम मित्र है, यह बात बलदेवसिंह नहीं जानते।

रघुवीर—अच्छा जायँगे कहाँ?

नौकर—यहाँ से पाँच कोस पर जो वीरपुर है वहीं।

रघुवीर—हूँ, तो फिर क्या सलाह है?

नौकर—सलाह क्या—यहाँ से ढाई कोस पर, उनके गाँव और वीरपुर के बीच, अपने १५, २० आदमी लगा दीजिए। अँधेरी रात तो हई है। कोई पहचान भी न सकेगा। दूसरे, ये लोग ढोट बाँध लेंगे।

रघुवीर—सलाह तो उत्तम है। अच्छा ऐसा ही सही; और सुजानसिंह को भी साथ कर देंगे। वह बलदेवसिंह के खून का प्यासा घूम रहा है। इसलिए अच्छा साथ देगा।

इधर तो ये परामर्श गाँठे जा रहे थे; और उधर बलदेवसिंह के यहाँ न्योते में जाने के सम्बन्ध में बातचीत होरही थी। बलदेवसिंह किसी की बात के उत्तर में बोले—यह तो ठीक है, परन्तु किसी को मालूम ही कैसे हो सकता है कि हम कब और कहाँ जायँगे। दूसरे, रास्ता केवल पाँच कोस है। एक घण्टे में पहुँच जायँगे। मेरी समझ में तो कोई डर की बात नहीं। बलदेवसिंह का पुत्र, जिसकी उम्र १८ वर्ष की थी, बोला—और डर भी हो तो क्या हम हलवा थोड़ा ही हैं जो कोई निगल जायगा। हमारे साथ जो चार आदमी जायँगे वे दस पर भारी हैं।

बलदेवसिंह पुत्र की वीरवाणी सुन कर बोले—शाबाश बेटा, तुम्हारे ऐसे ही विचार होने चाहिए।

सन्ध्या-समय, सात बजे के कुछ पूर्व, जब चलने की तैयारी हो रही थी, बलदेवसिंह की तबीयत अकस्मात् बिगड़ गई। दो तीन कै हुईं और सिर में पीड़ा होने लगी। उन्होंने अपने पुत्र को बुला कर कहा—बेटा बलवन्त, मेरी तबीयत तो ठीक नहीं; मैं न जाऊँगा। अब रहे तुम, सो तुम्हारी जैसी इच्छा हो करो। जी चाहे जाओ, जी न चाहे न जाओ।

बलवन्तसिंह ने उत्तर दिया—यदि जी की बात होती तो न जाता; परन्तु जी की बात नहीं है। वहाँ सम्मिलित होना आवश्यक है। खैर, यदि आप नहीं जा सकते तो कह दिया जायगा कि तबीयत ठीक नहीं है। परन्तु मेरा जाना अत्यन्त आवश्यक है।

बलदेव—हाँ, यही मैं भी सोचता हूँ कि कम से कम एक आदमी को तो जाना ही चाहिए। अच्छा, तो तुम ईश्वर का नाम लेकर चल दो। परन्तु मेरा हृदय.....।

बलवन्त—अजी डर काहे का है; आप तो वृथा ही भय करते हैं। यह कह कर बलवन्तसिंह पिता के पास से चले आये और चलने के लिए तैयार होने लगे।

(३)

ठीक सवा आठ बजे बलवन्तसिंह घोड़े पर सवार होकर चल पड़े। साथ में चार लठधारी पैदल जवान थे। ये सब आपस में बातें करते हुए साधारण चाल से चलने लगे।

बलवन्तसिंह के चल देने के कुछ ही देर बाद बलदेव-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सिंह भी न जाने क्या सोच समझ कर, छः सात आदमियों सहित, चल पड़े।

उधर वे पाँचों आदमी जङ्गल की मन्द मन्द शीतल वायु का आनन्द लेते, हँसते-बोलते, चले जा रहे थे। लगभग दो कोस निकल जाने पर वे लोग एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जिसके दोनों ओर घने बाग़ थे। वहाँ पहुँचते ही किसी ने पूछा—कौन है ?

बलवन्तसिंह के साथियों में से एक ने कुछ रुखाई से उत्तर दिया—आदमी।

प्रश्नकर्ता—आदमी तो हो, यह हम भी जानते हैं; पर तुम लोग हो कौन ? किस गाँव के रहनेवाले हो ?

नौकर—(कड़े होकर) तुम्हें क्या मतलब ? किसी गाँव के होंगे !

प्रश्नकर्ता—अच्छा भाई अच्छा ! बिगड़ते क्यों हो ? हमने तो साधारण बात पूछी थी। भाई, हम लोग किसान आदमी हैं—समय ख़राब है। डर लगा रहता है—और कुछ बात नहीं।

नौकर—हाँ, अब तुम आदमियों की तरह बातें करते हो—अब हम भी बताये देते हैं। ठाकुर बलदेवसिंह के लड़के बलवन्तसिंह वीरपुर जा रहे हैं।

प्रश्नकर्ता—अच्छा। जुहार ठाकुर ! भाई मुझे क्या मालूम था। अँधेरे में अच्छी तरह दिखाई नहीं पड़ा। बड़े ठाकुर तो अच्छे हैं ?

नौकर—नहीं, अच्छे होते तो वे भी आते। इस समय उनकी तबीयत कुछ बिगड़ गई थी। इससे नहीं आये।

प्रश्नकर्ता—ऋतु बदल रही है, इसी से।

इसका प्रत्युत्तर कुछ नहीं दिया गया और सन्नाटा छा गया। परन्तु कठिनता से पाँच मिनट बीते होंगे कि दोनों ओर से चौदह-पन्द्रह आदमी निकल पड़े और उनमें से एक ने ललकार कर कहा—बस, आगे पैर मत रखना। पहले जो कुछ पास हो, रखते जाओ। यह सुनते ही चारों ने लाठियाँ सँभालीं। किन्तु ये लोग पूर्णतः सँभलने भी न पाये थे कि खटाखट लाठियाँ चलने लगीं। हाय मार डाला—खटाक। अरे इसे घोड़े से खींच लो—हैं हैं क्या करते हो, ठहरो। यह बलदेवसिंह नहीं है—खटाक, खटाक। दौड़ो—डाकू—खूनी, खटाक (गिरने का शब्द) हाय, नहीं नहीं, मेरे रहते बलवन्तसिंह को आँच नहीं आ सकती ! अरे इसे मारो, यह साले बलवन्त को अपनी छाती के नीचे दबाये पड़ा है—खटाक—इत्यादि शब्द सुनाई पड़ने लगे।

यह दशा न जाने कब तक रहती, परन्तु पीछे से लोगों के दौड़ते हुए आने का शब्द सुनाई पड़ा और किसी ने पुकार कर यह भी कहा—घबराना नहीं, हम लोग आ गये हैं। यह सुनते ही आक्रमणकारी झट इधर उधर बाग़ों से निकल गये।

आनेवालों ने निकट आकर एक लालटैन, जो वे साथ लाये थे, जलाई। आने वाले और कोई नहीं, स्वयं बलदेवसिंह और उनके साथी थे। बलवन्तसिंह के चारों साथी घायल हो गये थे। एक ओर एक मनुष्य बलवन्तसिंह को अपनी छाती के नीचे दाबे पड़ा था। बलदेवसिंह ने उसको बलवन्तसिंह के ऊपर से उठाया। बलवन्तसिंह उठ कर खड़े हो गये। उनके बहुत कम चोट आई थी। इधर बलदेवसिंह ने ज्योंही उस मनुष्य का मुख देखा, वे चिल्ला उठे—"ऐं—सुजानसिंह ! मेरे रक्त का प्यासा, मेरा शत्रु, सुजानसिंह ! ओह अब मैं समझा। यह सब इसी की करतूत—।"

बात काट कर बलवन्तसिंह बोला—"नहीं पिताजी, यही मेरा रक्षक है। यह इसी की कृपा का फल है जो मैं इस समय आपके सन्मुख जीवित खड़ा हूँ। यदि इसने आज मेरी रक्षा न की होती तो आपको मेरी लाश मिलती। यह मुझे अपनी छाती के नीचे लिये पड़ा रहा। स्वयं मार खाता रहा, परन्तु मुझे आँच न आने दी।"

"हैं—सुजान और तेरा रक्षक ! ईश्वर, यह कैसी माया है—यह कह कर बलदेवसिंह भूमि पर बैठ गये और सुजान का सिर अपनी गोद में रख लिया।"

इधर हिलने डुलने से सुजान ने भी आँखें खोलीं और अपने को बलदेवसिंह की गोद में पा कर उठने की चेष्टा करने लगा। परन्तु उठ न सका। अतएव दाँत पीस कर लेट गया।

बलदेवसिंह—क्यों सुजान, दाँत क्यों पीसते हो ?

सुजान—इस लिए कि आज तू मेरे हाथ से बच गया।

बलदेव—तेरी बातों से तो शत्रुता के भाव टपकते हैं; फिर तूने बलवन्त को क्यों बचाया ?

सुजान—हाँ, मैं तेरा शत्रु था, अब भी हूँ, और जब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न्यायवाचस्पति पण्डित गोपालदासजी ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तक जीवित हूँ रहूँगा; परन्तु, इस बालक का, जिसने कभी मुझे कोई हानि नहीं पहुँचाई, शत्रु नहीं।

इसी समय सुजान को एक बड़े ज़ोर की खून की कै हुई।

सुजान कराहता हुआ बोला—मेरी पसलियाँ टूट गई हैं। मैं अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकता। मैं तुम्हारे प्राण लेने के लिए आया था। परन्तु यहाँ आने पर बलवन्तसिंह के साथियों से बात चीत करने पर मालूम हुआ कि तुम, तबीयत ठीक न होने के कारण, नहीं आये। मैं अत्यन्त निराश हो गया। इसके पश्चात् मेरे साथियों ने बलवन्त के प्राण लेने की इच्छा से उन पर आक्रमण कर दिया—(फिर कै) आह! मेरे हृदय ने मुझे विवश किया कि निर्दोष बलवन्त के प्राण बचाऊँ। अतएव मैं इसे अपने नीचे लेकर पड़ गया। क्योंकि इसके अतिरिक्त दूसरा उपाय न था। उनको मार कर भगाना असम्भव था। उन लोगों ने मुझे, अँधेरे के कारण, बलवन्त का साथी समझ कर खूब पीटा। मैंने चिल्ला कर उन्हें रोका भी। परन्तु, हुल्लड़ में कौन सुनता है। (फिर कै)

बलदेव—परन्तु जब तुम मेरे शत्रु थे तब बलवन्त को मार कर पूरा उदला ले सकते थे; क्योंकि मुझे इसकी मृत्यु से इतना शोक होता कि मैं भी कदाचित् ही जीवित रहता।

सुजान—यह मैं जानता था; परन्तु नहीं, मैं इतना हृदयहीन नहीं। मैं हृदय रखता हूँ। मेरे भी पुत्र है। मैं जानता था कि पुत्र-शोक कैसा हो सकता है। मेरे साथ जो कुछ अत्याचार तुमने किये, मैं उसका बदला केवल तुम्हारे ही प्राणों से चाहता था, इस बालक के प्राणों से नहीं। यह इसमें उतना ही निर्दोष है जितना कि मेरे द्वारा तुम्हारे प्राण जाने में मेरा पुत्र होता—आह!

इसके पश्चात् एक बड़े ज़ोर की कै—और सुजान, सहृदय सुजान, सदैव के लिए चुप हो गया।

× × × × ×

बलदेवसिंह ने अपने गाँव में सुजान की एक बड़ी सुन्दर समाधि बनवाई है। उसी के समीप एक मन्दिर और कुआ तथा चारों ओर एक पुष्पवाटिका लगवाई है। गाँव के लोग वहाँ स्नान-पूजन इत्यादि किया करते हैं। दूसरे तीसरे बलदेव-सिंह भी अपने पुत्र सहित वहाँ आते हैं और अपने सहृदय शत्रु की स्मृति को, चार अश्रुबिन्दु गिरा कर, सींच जाते हैं।

विश्वम्भरनाथ शर्म्मा कौशिक

पुराण और इतिहास।

बहुतों की यह धारणा है कि पुराण और इतिहास एक ही पदार्थ है। प्राचीन काल में तो ये दोनों अवश्य ही एक थे; क्योंकि पुराणों के सिवा कोई इतिहास-ग्रन्थ अलग उपलब्ध नहीं। महाभारत इतिहास की श्रेणी में गिना जा सकता है, पर इसमें मतभेद है; क्योंकि महाभारत को पुराण भी कह सकते हैं और इतिहास भी। यहाँ तक कि वह "भारतः पञ्चमो वेदः" भी प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। जिसको साक्षात् गणेशजी ने श्रम-पूर्वक लिखा उसकी महनीयता की इयत्ता ही नहीं। अस्तु। वास्तव में पुराण और इतिहास के उद्देशों में भेद है। यह बात प्राचीन ग्रन्थों में स्पष्ट लिखी भी है। इतिहास का चाहे जो अर्थ या उद्देश हो, इस समय वह पुराणों में ही, गङ्गा-यमुना के सङ्गम की तरह, मिल गया है। उसके असली स्वरूप का दर्शन किंवा पुराणों से उसका ठीक ठीक उद्धार असम्भव हो गया है।

इतिहास सब देशों का है। पर हमारे देश का नहीं है, यह बात सर्वथा आदरणीय नहीं। स्मरणातीत काल से पृथ्वी पर जो देश सभ्य माना गया है उस देश का इतिहास, उसी समय के अनुसार, हो सकता है, न कि नवीन-सभ्यताभिमानी देशों की तरह सिलसिलेवार—तिथि-मिति-नक्षत्र-संवत् के लेखों से सुसज्जित। यह बात विचारशीलों से छिपी नहीं। कुछ लोगों का ख़याल है कि जितने समय का इतिहास अज्ञात है, उतने समय तक हम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

असभ्य थे। पर यह मन्तव्य हमारे देश के लिए प्रमाणभूत नहीं हो सकता। आज भी सभ्य देशों को उनकी सभ्यता-विकाश के पूर्व-चरित्र बतलाने की सामग्री हमारे यहाँ मौजूद है; उनके यहाँ कहीं नहीं। पृथिवी में जो वेद अति प्राचीन धर्म-ग्रन्थ है—जिसकी अपेक्षा प्राचीन धर्म-ग्रन्थ दूसरा है ही नहीं—वह जिस देश का अमूल्य धन है—अगाध ज्ञान-भाण्डार है—सिवा उस देश के महानुभावों के अन्य देशों की सभ्यता का उपादान-कारण कौन बतला सकता है? अतएव, इस समय, इतिहास न लिखने का कलङ्क उस पर लगाना भूल है। उस समय जैसी रीति, नीति और आवश्यकता थी तदनुसार पुराणों में बातें, कहीं विस्तार से और कहीं संक्षेप से, लिखी गई हैं। परन्तु वे इस समय के विचार से लोगों को अनावश्यक जान पड़ती हैं। अब समय-सञ्चार और आवश्यकता दूसरे ढङ्ग की है। इसी से हमारे देश के ही महानुभावों को प्राचीन लेख-शैली पसन्द नहीं। इस दशा में विदेशी उसके समर्थक क्यों कर हो सकते हैं? वे तो जहाँ तक हो सकेगा, वेद-पुराण-धर्मशास्त्र और उनके आविर्भावकों को ईसा के बाद ही किसी शताब्दी में ढकेलने की चेष्टा करेंगे। प्रयोजन यह है कि वर्तमानकालीन पुरातत्त्व के सिद्धान्तों के अनुसार हमारे यहाँ का इतिहास पूरा नहीं मिल सकता, जो लोगों को सन्तोष-प्रद हो।

इतिहास के प्रमेयांश को आर्यों ने पुराणों से पृथक माना है। वे उसके महत्त्व और उपयोगिता को पूर्ण रीति से जानते थे। कालक्रम से विराट् पुराण उसको निगल गये हैं।

यजुर्वेद के शतपथब्राह्मण और बृहदारण्यक में लिखा है—

"...महतो भूतस्य निश्वसितमेतद् यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानानि अस्यैव एतानि सर्वाणि निश्वसितानि"॥ बृहदा० २।४।१० और शतपथ १४।६।११६।

छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है—

सहोवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदो नाम वेदम्"—उत्तरार्ध ७।१।१।

सायणाचार्य्य वेद की प्रस्तावना में लिखते हैं—

"देवासुराः संयत्ता आसन्नित्यादय इतिहासाः। इदं वा अग्रेणैव किञ्चिदासीदित्यादिकं जगतः प्रागवस्थामुपक्रम्य सर्गप्रतिपादकं वाक्यजातं पुराणम्।

महाभारत में लिखा है—

"धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्।
पूर्ववृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते"॥

विष्णुपुराण की टीका में श्रीधरस्वामी ने लिखा है—

"आर्ष्यादि बहु व्याख्यानं देवर्षिचरिताश्रयम्।
इतिहासमिति प्रोक्तं भविष्याद्भुतधर्मयुक्॥"

श्रीशङ्कराचार्य्य ने बृहदारण्यक-भाष्य में लिखा है—

"इतिहास इत्युर्वशीपुरूरवसोः संवादादि उर्वशीहाप्सरा इत्यादि ब्राह्मणमेव पुराणमसद्वा इदमग्र आसीदित्यादि"। २।४।१०

मनुस्मृति में लिखा है—

"स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि।
आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च॥"

इत्यादि प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के लेखों से पुराण और इतिहास का विषय अलग अलग ही माना गया प्रमाणित होता है। परन्तु अब पुराण मिलता है, इतिहास नहीं; वह पुराणों में डूब गया। अब "इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्"—इसके समर्थन के लिए केवल पुराण ही बाक़ी हैं। विष्णु, ब्रह्माण्ड, मत्स्य आदि पुराणों के मत से पञ्चलक्षण-समन्वित पुराण कहलाता है। पुराण-परीक्षार्थ प्राचीनों ने यही कसौटी रक्खी है। जैसा—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥"

सर्ग—सृष्टितत्त्व, प्रतिसर्ग—पुनः सृष्टि-लय, देव और पितरों की वंशावली, मन्वन्तरों की कथा, वंशावलियाँ—यह सब वर्णन जिसमें किया गया हो उसे पुराण कहते हैं। ऊपर के वाक्यों से यह सिद्ध होता है कि इतिहास में केवल राजाओं का वंश-वृत्तान्त नहीं रहता था; किन्तु साधारण बुद्धिमान् देश-हितैषियों का भी वर्णन रहता था। इतिहास जातीय परिवर्तन का विशद विवरण है, किसी व्यक्ति-विशेष का वर्णन नहीं। प्रजा ही इतिहास का विषय है—राजा बहुत कम। यह बात बुद्धिमानों से छिपी नहीं।

गिरिजाप्रसाद द्विवेदी

वैतालिक।

[२]

रवि पश्चिम को जाता है, वहाँ ज्योति फैलाता है।
फिर प्राची को आता है, ललित लालिमा लाता है।
आवागमन-युक्त रवि है, पर निष्काम मुक्त रवि है।
यही तुम्हारा भी क्रम हो, मित्र! तभी सार्थक श्रम हो।
दुर्गति में सन्तोषी हो, तो तुम प्रभु के दोषी हो।
उसने जो भव-विभव दिया, उसे आप तुमने न लिया।
त्याग त्याग पर वह किस का, प्रथम प्राप्त तो हो जिसका।
प्राप्त करो तब त्याग करो, समुचित कर्म-विभाग करो।
प्रेम छोड़ कर श्रेय लिया, तो भी क्या कर्तृत्व किया।
स्वयं प्रेम में श्रेय रहे, और गेय में ध्येय रहे।
जुड़ा जगत का मेला है, क्या यह सभी झमेला है।
खेल कौन यह खेल रहा, क्यों इतना श्रम झेल रहा।
भुवन-भीड़ में बिना घुसे, पाओगे किस भाँति उसे।
जी में जिसकी चाह भरी, कह दे किसकी आह भरी?
कहते हो कि कहाँ है वह, देखो जहाँ वहाँ है वह।
किसी ओर ग्रीवा मोड़ो, कन्धे से कन्धा जोड़ो।
परिवर्त्तित कर दृश्य-पटी, नाट्य कर रही प्रकृति-नटी।
सूत्रधार के बिना कभी, रहती यह शृङ्खला सभी।
वह अपने छात्रों में है, परिवर्त्तित पात्रों में है।
पर है प्रकट क्रिया उसकी, देगी पता प्रिया उसकी।
जो भव-नाटक स्रष्टा है, वही नाट्य का द्रष्टा है।
पात्र बनो सब खेल करो, आप अलग हो, तुम न डरो।
श्रीशुक ने सब को छोड़ा, रम्भा से भी मुँह मोड़ा।
किन्तु विदेह कर्मयोगी, मुक्त रहे रह कर भोगी।
प्रकृति-पुरुष की है क्रीड़ा, कभी विकास कभी व्रीड़ा।
जीव-ब्रह्म-माया न तजो, शिव को शक्ति समेत भजो।
ऊँचे चढ़ो, खड़े हो तुम, इतने बढ़ो, बड़े हो तुम।
तुम्हें प्रलोभन छू न सकें, आशा छोड़ें, अलग तकें।
पड़े पड़े पछताओगे, पैरों से पिस जाओगे।
गिरने के डर से पड़ना, मृत्यु-मार्ग में है अड़ना।
जीते हो कि मरे हो तुम, मुर्दा बने धरे हो तुम।
जय है वहाँ प्राणपण में, मरण कहाँ जीवन-रण में।
जाने दो सब बातों को, आने दो आघातों को।
तुम केवल कुछ कड़े रहो, आत्मव्रत पर अड़े रहो।
चला करे संसार-पवन, ढा न सकेगी मनोभवन।
बाहर कर्म-क्रान्ति रहे, भीतर अविचल शान्ति रहे।
पश्चिम तक प्रकाश फैला, जागा वह छवि का छैला।
उड़ने लगी लाल-मुनिया, है बस गई नई दुनिया।
बस कर तुम्हीं उजड़ते हो, बन कर स्वयं बिगड़ते हो।
मानो अब यों पिछड़ो मत, उठो विश्व से बिछुड़ो मत।
वह भौतिक उन्नति देखो, सब विषयों की अति देखो।
वह अप्रतिहत गति देखो, प्रकृति-विजय-पद्धति देखो।
नहीं काम से थकते वे, जो चाहें कर सकते वे।
कहाँ पक्ष से मुड़ते हैं, अम्बर में भी उड़ते हैं।
जो मस्तक में लाते हैं, कर से कर दिखलाते हैं।
सागर उनका घर-सा है, डर को भी कुछ डर सा है।
वे स्वतन्त्र दृढ़चेता हैं, अद्भुत-यन्त्र-प्रणेता हैं।
विद्युद्बाष्प-विजेता हैं, बने विश्व के नेता हैं।
मिट्टी भी छू लेते हैं, तो सोना कर देते हैं।
वे साहस के पाले हैं, अति अपूर्व बलवाले हैं।
वाहन उनके वायु भरे, जीवित लोह-स्नायु भरे।
बाजे उनके गाते हैं, चित्र-नाट्य दिखलाते हैं।
कोरी बातों से बचते, नहीं धुयें के पुल रचते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

किन्तु उसे भी धरते हैं, और प्रज्वलित करते हैं।
सड़ते नहीं सु-फल उनके, विफल नहीं कौशल उनके।
वे सब आशावादी हैं, उद्यम के उन्मादी हैं।
पण्य-वीथियाँ भूतल की, भारी से लेकर हलकी।
उनकी आप साक्षिणी हैं, वर-व्यवसाय-साक्षिणी हैं।
विभव उन्हें अपनाते हैं, आप खोजते आते हैं।
वे उनसे घर भरते हैं, सब विघ्नों को तरते हैं।
बच्चे भी कब हैं थकते, नहीं पराया मुँह तकते।
बाप जमा कर जाते हैं, आप कमा कर खाते हैं।
वे अविचल उद्योगी हैं, तब भव-वैभव-भोगी हैं।
हैं कुछ करने के सनकी, धुन है नित्य नयेपन की।
स्वावलम्ब की साध उन्हें, भिक्षा है अपराध उन्हें।
रखते हैं उद्देश सभी, होते नहीं हताश कभी।
शक्ति-समाराधक सब हैं, देश-भक्ति-साधक सब हैं।
प्रिय है तुम्हें वेश उनका, वे हैं और देश उनका।
तुम भी बन जाओ वैसे, अथवा पहले थे जैसे।
सम्मुख हैं दृष्टान्त खड़े, फिर भी तुम किस लिए पड़े।
दिन-मणि पन्था दिखा रहा, अवसर सन्था सिखा रहा।
देखो और स्वयं दीखो, जो सिखलाया था, सीखो।
आत्मा का उद्धरण करो, कुछ न बने, अनुसरण करो।
पर अन्धों की भाँति नहीं, तुम भेड़ों की पाँति नहीं।
पुरुषोत्तम के अंशज हो, उन ऋषियों के वंशज हो।
प्रकट हुई जिनके द्वारा, विश्वधर्म की ध्रुवधारा।
यही तुम्हारी व्याप्ति नहीं, तनु के साथ समाप्ति नहीं।
तुम्हें वहाँ भी जाना है, हुआ जहाँ से आना है।
उनको इसका ध्यान नहीं, जो कुछ है विज्ञान यहीं।
यही जगत उनका घर है, किन्तु तुम्हारा पथ भर है।
रम्य रहे इसकी रचना, पर विलासिता से बचना।
पश्चिम जिसमें डूब रहा, और यहाँ तक ऊब रहा।
वह पथ में ही भूला है, अपने मद में फूला है।
देह अभी तक क्लान्त नहीं, पर उसका मन शान्त नहीं।
'मैं' के साथ वहाँ 'तू' है, 'मैं' में भरी यहाँ 'भू' है।
वहाँ 'सिकन्दर' सजते हैं, तुम में 'बुद्ध' उपजते हैं।
भय से उसकी सत्ता है, शस्त्रों से सुमहत्ता है।
किन्तु तुम्हारी विश्व-विजय, रही प्रेम की प्रभुतामय।
अधिकृत करके हृदयासन, तुमने किया लोकशासन।
लेकर दण्डमात्र कर में, पूजित हुए विश्व भर में।
वैर-शुद्धि का काम न था, कहीं क्रान्ति का नाम न था।
आत्मबुद्धि सब के हित थी, शान्ति स्वयं समुपस्थित थी।
तुम कितने बड़भागी थे, नृप होकर भी त्यागी थे।
फिर भी आत्म-परीक्षा दो, नृप बन कर गुरुदीक्षा दो।
उनका-सा दृढ़ पक्ष रहे, पर अपना ही लक्ष रहे।
उनका ऐसा ढङ्ग बढ़े, पर अपना ही रङ्ग चढ़े।
उनकी-सी साधना रहे, अपनी आराधना रहे।
उनका अथक परिश्रम हो, पर उसमें अपना क्रम हो,
उनकी ऐसी कृति रक्खो, अपनी किन्तु प्रकृति रक्खो।
उनका-सा आवेश रहे, पर अपना उद्देश रहे।
उनकी नीति, रीति अपनी, उनकी भीति, प्रीति अपनी।
उनकी गति, पद्धति अपनी, उनकी उन्नति, मति अपनी।
उनकी प्रस्तावना पगे, पर अपनी भावना जगे।
उनका-सा उद्योग करो, किन्तु भोग में योग भरो।
आदान-प्रदान यह हो, त्यागपूर्ण शुभ सङ्ग्रह हो।
उनका गृह-विद्रोह मिटे, और तुम्हारा मोह मिटे।
हृदय और मस्तिष्क खिलें, ज्ञान और विज्ञान मिलें।
लोक और परलोक लसें, दोनों घर बे-रोक बसें।
बैठो वीर-मनोरथ में, विचरो सदा प्रेम-पथ में।
तुम प्रकाश से खिल जाओ, अखिल विश्व में मिल जाओ।
ऊँची पुनः पताका हो, सत्य धर्म का साका हो।
भूतल की सब भ्रान्ति मिटे, और तुम्हारी श्रान्ति मिटे।

मैथिलीशरण गुप्त

सूर्य्य।

अमेरिका के एक प्रसिद्ध विद्वान् ने भौतिक-विद्या द्वारा यह सिद्ध किया है कि पृथ्वी के निवासियों के जीवन पर ग्रहों के प्रभाव का पड़ना सम्भव है। उनका कथन है कि वर्त्तमान युद्ध की उत्पत्ति भी इन्हीं कारणों से है। जल-वायु के कारण मनुष्य की प्रकृति में परिवर्तन होता रहता है। इसी प्रकार ग्रहों के कारण

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भी पृथ्वी पर परिवर्तन हो सकते हैं। ग्रह-विशेष का प्रभाव कितना अधिक, अथवा कितना कम होगा, यह पृथ्वी और उस ग्रह के सम्बन्ध पर अवलम्बित है। कभी तो सान्निध्य होने पर भी पूर्ण प्रभाव नहीं पड़ता और कभी दूर होने पर भी प्रभाव पड़ता है। ग्रह की स्थिति के कारण ही इस प्रभाव में न्यूनाधिकता नहीं होती। सूर्य्य के सम्बन्ध में उस ग्रह की और पृथ्वी की स्थिति कैसी है, इस बात का विचार करना पड़ता है। कारण यह है कि ग्रहों में जो शक्ति है वह सूर्य्य ही की प्रेरणा से है। इसी से विद्वानों का अनुमान है कि यदि हम सूर्य्य की उष्णता का तारतम्य ठीक कर सकें और उसे यथोचित प्रकार से काम में लायें तो ग्रहों के बुरे प्रभाव दूर हो सकते हैं।

इसी प्रकार विशेष जातियों में जो दुर्गुण अथवा दुर्भाव उत्पन्न हो जाते हैं वे भी दूर किये जा सकते हैं। सूर्य्य के प्रकाश में कुछ विशेषता है। उस विशेषता के गुणों का अभ्यास मनुष्यों को करना चाहिए। इन विशेषताओं या क्रियाओं की विधि का निश्चय करने के लिए अनुसन्धान किया जा रहा है। बात यह है कि सूर्य्य ही समस्त ग्रहों का और उनमें उत्पन्न स्थावर-जङ्गम पदार्थों का प्राणदाता है। पाश्चात्य ज्योतिष का मुख्य सिद्धान्त यह है कि सौरजगत् में पृथ्वी, शुक्र, बुध, शनि इत्यादि ग्रह सूर्य्य के चारों ओर घूमते हैं। जिस गोलाकार पथ पर वे घूम रहे हैं उसे अँगरेज़ी में आर्बिट (Orbit) अर्थात् भ्रमण-कक्षा कहते हैं। इस पथ या कक्षा पर समस्त ग्रह सूर्य्य ही के आकर्षण से स्थित हैं और घूम रहे हैं। इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर पूर्वोक्त नवीन क्रियाओं की गति-विधि का विचार वैज्ञानिक लोग कर रहे हैं।

यह सिद्धान्त, वास्तव में, भारत के प्राचीन सिद्धान्तों के सदृश है। हमारे यहाँ सूर्य्य की आराधना की जो विशेष क्रिया निश्चित है उसका अनुष्ठान सायं-प्रातः दोनों ही समय किया जाता है। इस आराधना का मूल मन्त्र गायत्री है। उसका मुख्य उद्देश बुद्धि की वृद्धि और मानसिक उन्नति करना है। तदर्थ सूर्य्य से प्रार्थना की जाती है।

यजुर्वेद की एक ऋचा में स्पष्ट लिखा है कि सूर्य्य के आकर्षण से ही ग्रह स्थित हैं और अपनी अपनी कक्षा में घूम रहे हैं। वह ऋचा यह है—

तत्सूर्य्यस्य देवत्वन्तन्महित्वम्मध्ययाकर्त्तोर्व्वित्रतुर्ठं सञ्जभार।

इसका भावार्थ यह है कि यह उसी सूर्य्य का देवत्व और महत्त्व है जो सूर्य्य अपनी किरणों द्वारा कर्म-क्षेत्र जगत् में स्थित हो कर अपने आकर्षण से ग्रह-समूह को उनकी कक्षा में नियमित रखता है।

सूर्य्य से जो जीवनी शक्ति जगत् को प्राप्त होती है उसका वर्णन भी एक ऋचा में है—

तरणिर्व्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य्य व्विश्वमाभासि रोचनम्।

अर्थात् हे सूर्य्य, आप महामार्ग में जाने वाले हो, विश्व मात्र के दर्शनीय और ज्योति के कर्ता हो। अर्थात् चन्द्रादि की ज्योति के कारण भी आप ही हो और अन्तरिक्ष की ज्योति के भी।

इस से सूचित है कि चन्द्रमा में भी प्रकाश का कारण सूर्य्य ही की ज्योति है। यह मत, जो इस समय पाश्चात्य देशों में प्रचलित है, प्राचीन भारत में बहुत पहले से ही प्रचलित चला आता है। सूर्य्य को अन्तरात्मा का एक मात्र प्रेरक मान कर वैदिक ऋचाओं में उसका आवाहन किया गया है।

पौराणिक समय में भी सूर्य्य का वह विशेष प्रभाव, जो पृथ्वी पर पड़ता है, और जिसके कारण पृथ्वी के प्राणियों के जीवन में परिवर्तन हुआ करता है, निम्न-लिखित श्लोक में झलकाया गया है। यह श्लोक बहुत प्रसिद्ध है—

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे विरिञ्चिनारायणशङ्करात्मने॥

इसके अनुसार जीवनी-शक्ति का मूल आधार सूर्य्य ही है। सूर्य्य ही से आरोग्य प्राप्त होता है और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आरोग्य ही से साम्पत्तिक उन्नति होती है। सूर्य्य का एक नाम है अंशुमान्। उसका अर्थ है जीवन-शक्ति का वर्धक। इसी तरह उसके विवस्वान् नाम का अर्थ है पाचन-शक्ति का वर्धक। उसका अन्य नाम है सविता। इस नाम से सूर्य्य का वह रूप ग्रहण किया जाता है जिसकी स्थिति सूर्य्य-प्रकाश न रहने पर भी बनी रहती है। अर्थात् दिन में सूर्य्य प्रकाश देता है और रात्रि में सविता अपने प्रभाव-द्वारा शक्तिदान करता है।

ये विचार प्राचीन भारत के विद्वानों के हैं। इस अवसर पर इनके उल्लेख का हेतु यह है कि आज कल यही विषय पाश्चात्य वैज्ञानिकों के विचार-क्षेत्र में विचरण कर रहा है। यदि विज्ञान से भी इन विचारों की सत्यता सिद्ध हो जाय तो हम लोगों के गायत्री-मन्त्र की गई हुई महिमा फिर थोड़ी-बहुत लौट आवे।

शारदाप्रसाद, एम० ए०

पुस्तकालयों का सञ्चालन और उनकी उन्नति के उपाय।

(१)

पुस्तकालय शब्द का उच्चारण सुनते ही यदि किसी के मानसदर्पण में मेज़, कुरसी, आलमारियों से सजे हुए एक बहुत बड़े कमरे का दृश्य दृष्टिगत हो, तो मुझे खेद के साथ कहना पड़ेगा कि ऐसे मनुष्य का यह ज्ञान अत्यन्त सङ्कीर्ण सीमा के भीतर आबद्ध ही नहीं, किन्तु सर्वथा अनुपयुक्त है।

पुस्तकालय को अँगरेज़ी में लाइब्रेरी कहते हैं। पर इससे यह न समझना चाहिए कि लाईब्रेरी ही पुस्तकालय है। लाइब्रेरी शब्द की उत्पत्ति के बहुत पूर्व से पुस्तकालयों के अस्तित्व के विषय में इतिहासालोचना के द्वारा हमें बहुत कुछ अवगति हो सकती है।

आज कल पुस्तकें काग़ज़ पर लिखी जाती हैं। काग़ज़ यन्त्रों द्वारा निर्म्मित होता है। रुई, चीथड़ों तथा पत्तों से काग़ज़ बनाने की पद्धति भारतवर्ष में पहले ख़ूब प्रचलित थी। देखने में यद्यपि ये काग़ज़ सुन्दर न होते थे, पर मज़बूती में इनके साथ आज कल के काग़ज़ों की तुलना नहीं की जा सकती। ऐसे काग़ज़ों पर लिखी हुई शताब्दियों की पुरानी पुस्तकें अद्यापि वर्तमान हैं। विलायती "पार्चमेंट" इनसे हार मानता है। इससे भी पहले हमारे यहाँ ताड़ के पत्तों पर पुस्तकें लिखी जाती थीं। अब हमारी पुस्तकों को कीड़े खा जाते हैं। परन्तु हमारी पुरानी पोथियों में कीड़े न लगते थे। अनुसन्धान से ज्ञात हुआ है कि हमारे पूर्व-पुरुषों को एक तरह का पीला पीला लेप बनाने की रीति मालूम थी, जिसे ताड़ के पत्तों पर लगाने से कीड़ों की दाल न गलती थी।

कुछ दिन हुए, नेपाल के महाराज ने ७,००० पुरानी हस्तलिखित पुस्तकें विलायत के आक्सफर्ड-विश्वविद्यालय को प्रदान की हैं। बुद्ध-गया के मठ में ऐसी सहस्रों पुस्तकें थीं जिनमें से बहुत सी तो नष्ट हो गईं, बहुत सी अब भी विद्यमान हैं। मदरास-प्रान्तवर्ती तांजोर के राज-पुस्तकालय में हाथ की लिखी हुई १८,००० पुस्तकें हैं, जिनमें से ८,००० ताड़पत्र पर हैं। विहार-प्रान्त के प्राचीन नालन्द-नगर में जो बौद्ध महाविद्यालय था उसमें भी ऐसी लाखों पुस्तकें थीं। कलकत्ता तथा बनारस के संस्कृत-कालेजों के पुस्तकागारों में तीन तीन हज़ार से कुछ अधिक और बङ्गाल के रायल एशियाटिक सोसायटी के पुस्तकालय में प्रायः दस हज़ार के लगभग हस्तलिखित पुस्तकें रक्खी हैं।

मिसर-देश के आदिम निवासी जिस वस्तु पर अपनी पुस्तकें लिखा करते थे उसे वे पेपीरस (Papyrus) कहते थे। प्रमाण मिलता है कि ईसा मसीह के जन्म के दो हज़ार वर्ष पहले से प्राचीन मिसरवासी इस प्रकार का काग़ज़ बनाना जानते थे। वहाँ पेपीरस के आविष्कार के बाद से ही पुस्तक लिखने की रीति प्रचलित हुई। पुरातत्त्ववेत्ताओं के अनुसन्धान से मालूम हुआ है कि मिसर के भूपति प्रथम आमेनोफ़िस के समय की एक पाण्डुलिपि, पेपीरस पर लिखी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हुई, अब तक विद्यमान है। अनुमान है कि वह साढ़े तीन हज़ार वर्ष की पुरानी है।

बोटा (Botta) तथा लैयर्ड (Layard) इन दो प्रत्न-तत्त्ववेत्ताओं ने उन्नीसवीं शताब्दी में बेबीलोनिया (बाबुल) तथा आसीरिया की प्राचीन सभ्यता के विषय में बहुत सी नई नई बातों का अनुसन्धान करके यह दिखाया है कि ईसा मसीह के जन्म के तीन हज़ार वर्ष पहले भी वहाँ बहुत बड़े बड़े पुस्तकालय विद्यमान थे, जिनमें दस दस हज़ार पुस्तकें थीं। उस समय चिकनी मिट्टी के खपरों पर, लोहे के नुकीले क़लम से, एक अद्भुत प्रकार के तिकोने अक्षर खोद खोद कर पुस्तकें लिखी जाती थीं। लोग परिश्रम को परिश्रम ही न समझते थे। उनके अक्षर इतने छोटे हैं कि बिना अणुवीक्षण-यन्त्र की सहायता के वे पढ़े ही नहीं जा सकते। उस समय की ऐसी पुस्तकें देख कर अत्यधिक आश्चर्य्य होता है। प्राचीन मिसर के समाधिमन्दिरों (Pyramids) को देखने से भी, इसी तरह, बुद्धि काम नहीं करती। किन इञ्जीनियरों ने उन्हें बनाया होगा। कैसे यन्त्रों से बड़े बड़े पत्थरों को हज़ारों फुट ऊपर उठाया होगा। वह कौन सा मसाला था जिससे जोड़े जाने के कारण हज़ारों वर्ष तक बादल, वर्षा, आँधी, वज्रपात तथा भूकम्प इत्यादि के धक्कों को वे सहन करने में समर्थ हुए। इसी तरह इन पुस्तकों के लेखकों के विषय में विचार करते समय बुद्धि स्तम्भित हो जाती है। समझ में नहीं आता कि इनके परिश्रम का अन्त था या नहीं। सैकड़ों नहीं, हज़ारों पटरियों को क़रीने के साथ रखना, उन पर पृष्ठाङ्क लगाना, पुस्तकों की सूची बनाना—सभी कार्य्य आश्चर्य्यजनक मालूम होते हैं। सन् १८५० ईसवी में इतिहास-प्रसिद्ध बेबिलोन के अन्तर्गत निनाभा (Ninevah) नगर के प्राचीन ध्वंसावशेष खोदते खोदते लैयर्ड साहब को ऐसी हज़ारों पटरियाँ मिलीं, जिन पर अक्षर खुदे हुए हैं। ये पटरियाँ विलायत के ब्रिटिश म्यूज़ियम (अद्भुतालय) में रक्खी हैं।

स्थानाभाव के कारण मैं प्राचीन ग्रीक, रोमक, अरबी, रूमी इत्यादि जातियों के पुस्तकालयों के विषय में अधिक नहीं लिख सकता। ग्रीस में पिसिस्ट्रेटस, पलिक्रेटस, युक्लिड (जिसका रेखागणित, Geometry, हम आज तक पढ़ते हैं), निकोक्रेटस, युरिपाइडिस तथा एरिसटोटल आदि पुस्तकों के संग्रह-कर्त्ताओं में प्रधान हैं।

रोमक लोग ग्रीक लोगों के समान पण्डित न थे, परन्तु युद्धव्यवसाय में वे उनसे बढ़े चढ़े थे। इस कारण उनके यहाँ के पुस्तकालयों की उत्पत्ति भी कुछ विचित्र ही है। ईसवी सन् के १६७ वर्ष पहले एमिलियस पोलस (Æmilius Paulus) मेसिडोनिया (मक़दूनिया) के विरुद्ध युद्ध करने गया और वहाँ से हज़ारों पुस्तकें उठा लाया। फिर, कोई ८० वर्ष पीछे, सुला (Sulla) ग्रीस की राजधानी एथेन्स के पुस्तकागार से अनन्त पुस्तकें ज्यों की त्यों उठा लाया। इसके उपरान्त लुकुलस (Lucullus) पूर्वी राज्यों (Eastern Empire) को जीत कर वहाँ से अमूल्य ग्रन्थ-राशि रोम को ले आया। इसके पश्चात् धीरे धीरे रोम के पुस्तकालयों की उन्नति हुई।

सभी देशों में एक ऐसा समय था जब अध्ययन-अध्यापना, ग्रन्थ-रचना इत्यादि का काम समाज के एक विशेष अङ्ग के द्वारा होता था। इसका चिह्न अब तक कहीं कहीं विद्यमान है। पाश्चात्य देशों में यह विशेष अङ्ग धर्म्माधिकारियों (Priests or Ecclesiastics) के नाम से अभिहित था। हमारे देश में भी वेदाध्ययन-अधिकार ब्राह्मणेतर जातियों को न था। इसी कारण, प्राचीन समय के लिखे हुए ग्रन्थ जनसाधारण की सम्पत्ति न समझे जाते थे। उनको एकत्र रखने के लिए भी कोई साधारण स्थान अच्छा न समझा जाता था। जिस युग का यह ज़िक्र है वह ईश्वर-विश्वास का युग था। अतएव उस समय धर्म्ममन्दिरों का सम्मान बहुत अधिक था। सार्वविषयक पुस्तकें इस समय जैसे लिखी जाती हैं वैसे तब न लिखी जाती थीं। उस समय अधिकांश, बल्कि समस्त, पुस्तकें धार्म्मिक दृष्टि से देखी जाती थीं। इस कारण जो पुस्तकें लिखी जाती थीं वे मन्दिरों, मठों (Monasteries) और उपासनालयों ही में रक्खी जाती थीं। प्राचीन काल के पुस्तकालय यही थे; आज कल के सदृश वे किसी विशेष भवन में, विशेष रूप से, स्थापित न होते थे। आधुनिक पुस्तकालयों की स्थापना तो, धीरे धीरे, इसके बहुत पीछे आरम्भ हुई।

अतएव, पुस्तकालय कोई आधुनिक वस्तु नहीं; तीन सहस्र वर्ष पहले भी पुस्तकागारों के अस्तित्व के प्रमाण हमारे पास मौजूद हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गृह-निर्म्माण।

अच्छा तो पुस्तकालय स्थापित करने के लिए किस प्रकार का मकान सब से अधिक उपयोगी है। अधिकांश सम्मति से यह बात स्थिर हुई है कि पुस्तकागार के लिए दो मंज़िले से अधिक ऊँचा मकान न होना चाहिए, क्योंकि यदि तीन अथवा चार मंज़िला मकान हो तो पुस्तकें रखने, उठाने तथा लेने देने में बड़ी कठिनता उपस्थित होगी। तथापि पुस्तकालय-निर्म्माण के विषय में अमरीका के एक साहब का मत है कि चौमंज़िला मकान बनाने में किसी प्रकार की हानि नहीं। परन्तु इस सम्मति के सम्बन्ध में यह बात स्मरण रखने योग्य है कि वहाँ विद्युच्छक्ति के द्वारा वस्तुओं को उठाने तथा उतारने की व्यवस्था है। इस प्रकार के यन्त्रों को अँगरेज़ी में लिफ्ट (Lift) कहते हैं। पुस्तकालयों के भिन्न भिन्न अंश—पाठागार (Reading-Rooms), पुस्तकें रखने की जगह, कर्म्मचारियों के दफ़्तर, (जहाँ पुस्तकों के लेन-देन, आयव्यय का हिसाब इत्यादि होता है), जिल्दसाज़ी के लिए कमरे, नौकरों के रहने के लिए जगह इत्यादि—सब इस तरह एक दूसरे के पास बनने चाहिए जिससे कार्य्य बहुत सुगमता के साथ सम्पन्न हो सके। भवन-निर्म्माता को इस बात की तरफ़ विशेष ध्यान देना चाहिए कि पुस्तकों की संख्या प्रति वर्ष बढ़ती ही रहती है। अतएव पहले से ही ऐसा प्रबन्ध करना उचित है कि बने बनाये मकान को, भविष्यत् में, स्थान की कमी के कारण, तोड़ना न पड़े। वायु-प्रवेश तथा प्रकाश के लिए यथेष्ट प्रबन्ध होना चाहिए, क्योंकि दूषित वायु न निकलने से किताबों की जिल्दें बहुत शीघ्र नष्ट हो जाती हैं।

गैस तथा अधिक उत्ताप, ये दोनों ही पुस्तकों के शत्रु हैं; इस कारण भारतवर्ष जैसे ग्रीष्म-प्रधान देश में, गर्म्मियों के दिनों के लिए, ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए जिससे पुस्तकें अधिक उत्तप्त न होने पावें। गैस के द्वारा पुस्तकालयों को आलोकित करना अच्छा नहीं; साधारण मोम-बत्ती, और, यदि सम्भव हो तो, विद्युदालोक सबसे अच्छा है। कमरों के भीतर गुफ़ाओं की तरह अँधेरी जगह न होनी चाहिए। सीधी तथा लम्बी दीवारों के सहारे किताबें रखना ठीक है। यह भी देखना चाहिए कि किताबें एकदम दीवारों से सटा कर न रक्खी जायँ। मध्यस्थल की ख़ाली जगहों में कोश आदि 'रेफ़रेन्स' की बड़ी बड़ी किताबें, जैसे एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (Encyclopædia Britannica), Historians' History of the World, International Library of Famous Literature इत्यादि घूमती हुई आलमारियों में (Revolving Shelves) में रखनी चाहिए। जो पुस्तकें अधिक पढ़ी जाती हैं उन्हें नीचे के कमरों में और जिनके पढ़ने वाले कम होते हैं उन्हें ऊपर के कमरों में रखने का नियम अच्छा है। कमरों की बनावट साधारणतः ऐसी होती है कि एक ही समय में चारों तरफ़ से सूर्य्य का प्रकाश नहीं आ सकता; परन्तु थोड़ा सा प्रयत्न करने से दो तरफ़ की रोशनी से काम लिया जा सकता है। कमरों के भीतर लकड़ी अथवा ईंट अथवा पत्थर की सीढ़ियाँ (Galleries) बना कर उन पर पुस्तकें रखने का बन्दोबस्त करने से दाम कम लगता है ठीक, परन्तु ऐसा कदापि न करना चाहिए, क्योंकि इससे पुस्तकें रखने, उठाने तथा निकालने में बड़ी कठिनता उपस्थित होती है।

संरक्षण-विधि।

पुस्तकों को आलमारियों के भीतर रखना पुरानी चाल है; परन्तु अब यह चाल अच्छी नहीं समझी जाती। अनुभव से ज्ञात हुआ है कि आलमारियों में यदि काँच के किवाड़े हों तो पुस्तकों पर पूर्णरूप से वायु नहीं लगने पाती। इसका फल यह होता है कि काग़ज़ तथा जिल्द भीतर ही भीतर सूख कर कमज़ोर हो जाती है। यदि किवाड़े लकड़ी के हों तो पुस्तकें देखने में नहीं आतीं। सुतरां यह भी एक दोष है। इसीसे आजकल 'शेल्फ' अर्थात् लकड़ी के ताक़ सर्वोत्तम समझे जाते हैं।

विलायत तथा अन्यान्य पाश्चात्य देशों में ओक (Oak) नामक लकड़ी सब से उत्कृष्ट मानी जाती है। यहाँ के लिए साल अच्छा है। इससे भी अच्छा उपाय यह होगा कि क़लईदार लोहे का फ़्रेम बना कर उसमें लकड़ी का तख़्ता लगा दिया जाय और यदि हो सके तो लकड़ी चमड़े से मढ़ दी जाय। चमड़े से मढ़ने से पुस्तकें कम घिसती हैं। शेल्फ इत्यादि बनाते समय इस बात को न भूलना चाहिए कि कभी कभी दो पुस्तकों के बीच एक नई पुस्तक लाकर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रखने की आवश्यकता होती है। इसके लिए सहज उपाय यह है कि 'शेल्फ' में पुस्तकें ठीक ठीक रखने के लिए उनके बीच में लकड़ी या टिन की पतली पतली, परन्तु मज़बूत, पटरियाँ लगा दी जायँ। इससे एक पुस्तक निकालते समय दूसरी न गिरेगी। ये पटरियाँ 'शेल्फ' के तख़्तों के साथ एकदम जुड़ी न होनी चाहिए। वे ऐसी होनी चाहिए कि दाहने बायें आसानी से सरका दी जा सकें। ऐसा होने से मोटी से मोटी अथवा पतली से पतली पुस्तकों के लिए, पटरियाँ हटा कर, आवश्यक जगह निकाल ली जा सकती है। शेल्फों को सात फुट से अधिक ऊँची न बनवाना चाहिए। अधिक ऊँची होने से पुस्तकों को ऊपर से नीचे उतारने के लिए नसैनी की आवश्यकता होती है, जो ठीक नहीं।

यदि पुस्तकालय की आर्थिक अवस्था अच्छी हो तो डाक्टर आकलैंड का आविष्कृत Radcliffe Book Case अथवा Janner's Revolving Book Shelf मँगा कर उन्हीं नमूनों के 'शेल्फ' या 'बुक-केस' बनवा लेने चाहिए। ये चीज़ें शीघ्रता-पूर्वक अपने सन्मुख घुमा ली जा सकती हैं।

पाठागार।

पाठागार यदि वृत्ताकार अर्थात् गोल हो तो सर्वोत्तम है। उसके बीच में निरीक्षक—सुपरिंटेंडेंट (Superintendent) का स्थान होना चाहिए। उसके चारों तरफ़ पुस्तकों की सूचियाँ और संक्षिप्त विवरण। पुस्तकें वृत्ताकार रक्खी जानी चाहिए। विवरण-पुस्तकों से पाठकों को अल्प समय में ही, किसी पुस्तक में क्या क्या विषय है, यह मालूम हो सकता है। फिर, बीच अर्थात् केन्द्र से लेकर दीवार तक गाड़ी के पहियों में जैसे धुरे रहते हैं उसी प्रकार लम्बी लम्बी मेज़ें रखनी चाहिए। मेज़ों के अन्तर्वर्ती स्थानों में छोटी छोटी मेज़ें, बृहदाकार पुस्तकों के लिए, रहनी चाहिए। केन्द्रस्थल से जितना ही अधिक दीवार की तरफ़ जायँगे उतनी ही अधिक जगह मिलेगी। सुतरां पहली श्रेणी में एक, दूसरी में दो, और तीसरी में तीन मेज़ें एक साथ रक्खी जा सकती हैं।

पुस्तकें रखने-उठाने के लिए विलायत तथा अमरीका में वैद्युतिक शक्ति से अधिकांश काम लिया जाता है। परिदर्शक या अध्यक्ष (Librarian or Superintendent) सब से नीचे की मंज़िल में बैठता है और वहीं से तीसरी अथवा चौथी मंज़िल से यन्त्र-द्वारा पुस्तकें मँगाकर पाठकों को दे सकता है।

श्रेणीकरण।

पुस्तकों को किसी निर्दिष्ट नियमानुसार श्रेणीबद्ध न करने से पुस्तकालय में शीघ्रही विशृङ्खला फैल जाती है। इस लिए जितनी पुस्तकें हों सब विषयानुक्रम (Subject-wise) अथवा वर्णमाला—क्रम से (Alphabetically) श्रेणीभुक्त होनी चाहिए। श्रेणी-विभाग के विषय में प्रधानतः निम्नलिखित चार रीतियों में से किसी एक का, जिसकी जैसी इच्छा हो तदनुसार, अनुधावन करना चाहिए। आकार के अनुसार, जैसे चतुष्पत्री-क्वार्टो (Quarto) अष्टपत्री-आक्टेवो (Octavo) इत्यादि; (२) ग्रन्थकर्त्ता के नामानुसार, जैसे एक जगह पर कालिदास की ग्रन्थावली, दूसरी जगह शेक्सपियर की, तीसरी जगह एमर्सन की इत्यादि। (३) विषयानुक्रम के अनुसार, जैसे गणित की पुस्तकें एक जगह, विज्ञान की दूसरी जगह, इतिहास की तीसरी जगह इत्यादि। (४) प्राप्ति के समयानुसार, जैसे १९१२ ईसवी में आई हुई पुस्तकें एक जगह, १९१३ में प्राप्त दूसरी जगह इत्यादि। केवल पुस्तकों के नामानुसार श्रेणी-विभाग करने से कभी कभी बहुत गड़बड़ हो सकती है, क्योंकि पुस्तकों के नाम-मात्र से न तो उनके आकार, न ग्रन्थकर्ता के नाम, न विषय, बहुधा कुछ भी नहीं मालूम हो सकता।

उक्त चार प्रकारों में तीसरा, अर्थात् विषयानुक्रम के अनुसार विभाग करना, सबसे अच्छा समझा गया है। क्यों कि इस पद्धति का अवलम्बन करने से, पुस्तकालयों को उन्नति के मार्ग पर ले जाने के लिए क्या करना अथवा क्या न करना चाहिए, इस विषय में बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। रिचार्ड गारनेट (Richard Garnett) साहब के मतानुसार पुस्तकों को प्रधानतः दस भिन्न भिन्न विषयों में विभक्त करना उचित है—(१) धर्म्मग्रन्थ (Theology), (२) व्यवहारतत्त्व (Jurisprudence), (३) प्राकृतिक इतिहास (Natural History), (४) पुरातत्त्व तथा शिल्प-कला (Archæology and Arts), (५) दर्शनशास्त्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(Philosophy), (६) इतिहास (History), (७) भूगोल तथा भूगर्भविद्या (Geography and Geology), (८) जीवनचरित (Biography), (९) साहित्य (Belles Lettres), (१०) व्याकरण तथा अलङ्कार-शास्त्र Grammar, Philology and Rhetoric). फिर इनका एक एक विभाग अलग अलग करके प्रत्येक के अन्तर्गत समस्त पुस्तकों को, ग्रन्थकर्ता के नामानुसार, "शेल्फों" में रखना चाहिए। तदनन्तर एक लेखक द्वारा प्रणीत जितनी पुस्तकें हों सब को, वर्णमालाक्रम से, एक के बाद दूसरी को रखना चाहिए। पुस्तकालयों के लिए साधारणतया मैं भी इसी रीति का अनुमोदन करता हूँ।

पुस्तकों की जिल्द पर छपे हुए नम्बर तथा वर्णाङ्क लगाये बिना काम नहीं चल सकता। मैंने आज तक इस विषय की जितनी पद्धतियाँ देखीं उन सब में आमहर्ष्ट या ड्युई की पद्धति (Amherst or Deway System) सब से अच्छी मालूम हुई। पहले कमरों के दरवाज़ों पर मोटे मोटे अङ्कों से नम्बर लिख कर, फिर प्रत्येक कमरे के भीतर जितनी 'शेल्फ' हों सब पर अक्षरों के चिह्न लगा देने चाहिए। जैसे, "१२ ग" का अर्थ होगा, १२ नम्बर के कमरे का तीसरा 'शेल्फ'। 'शेल्फों' के अक्षर-चिह्न प्रत्येक कमरे में "क" से आरम्भ होकर "ख, ग, घ, ङ, च" इस प्रकार आगे बढ़ेंगे। प्रत्येक 'शेल्फ' में तीन या चार तख़्ते होते हैं। इसलिए उन पर भी १, २, ३ आदि लिख दिये जायँ। चिटों पर अङ्कादि छापते समय इस प्रकार छापना चाहिए—"१॰ क" अर्थात् १० नम्बर कमरे के पहले 'शेल्फ' का तीसरा तख़्ता। ऐसी चिटों को पुस्तकों की पीठ पर, नीचे थोड़ी सी जगह छोड़ कर, लगाना चाहिए। नीचे के छूटे हुए स्थान पर एक दूसरी चिट लगा दी जाती है, जिस पर नम्बर लिखने की रीति, विषयानुक्रम के अनुसार, होती है।

यह पद्धति, वास्तव में, इसके आविष्कर्ताओं की बुद्धिमत्ता की परिचायक है। इसमें प्रत्येक विषय के दस विभाग होते हैं और प्रत्येक विभाग के दस उपविभाग। मान लीजिए कि विषयानुक्रमिक विभाग में पहला विभाग है "धर्म्मग्रन्थ"। इसलिए उसके नम्बर १ से लेकर ९९ तक विभाग होंगे। दूसरा है, "व्यवहारशास्त्र"। इसलिए उसके नम्बर १०० से १९९ तक होंगे। इसी प्रकार तीसरा विषय यदि "प्राकृतिक विज्ञान" हो तो उसके नम्बर २०० से २९९ तक होंगे। ऐसे ही अन्यान्य विषयों के लिए सौ सौ नम्बर बढ़ते चले जायँगे। पहचान के लिए यदि आठवाँ विषय "इतिहास" है तो उसके नम्बर ७०० से ७९९ तक होंगे।

प्रत्येक विषय में दस विभाग होते हैं। इस लिए पहले विभाग के नम्बर १ से ९ तक, दूसरे के १० से १९ तक, तीसरे के २० से २९ तक, चौथे के ३० से ३९ तक होंगे। प्रत्येक विभाग में दस दस उपविभाग हैं। अतएव उन उपविभागों के नम्बर ०, १, २, ३ से लेकर ९ तक प्रथम विभाग में; १०,११,१२ से लेकर १९ तक दूसरे विभाग में; २०,२१,२२ से लेकर २९ तक तीसरे विभाग में होंगे। अच्छा, विभाग तथा उपविभाग किये किस नियम के अनुसार जाते हैं? किसी विषय को आप ले लीजिए। अच्छा—प्राकृतिक विज्ञान सही। इसके दस विभाग इस प्रकार किये जा सकते हैं—

(१) पदार्थविद्या (Physics), (२) रसायनशास्त्र (Chemistry), (३) प्राणितत्त्व (Zoology), (४) उद्भिजतत्त्व (Botany), (५) खनिजविद्या (Mineralogy), (६) भूगर्भतत्त्व (Geology), (७) गणित (Mathematics), (८) ज्योतिष (Astronomy and Astrology), (९) प्राकृतिक-अवस्थानिर्णय (Metereology), (१०) जलधितत्त्व (Marinology.)

अब इनमें से किसी एक विभाग को लीजिए—जैसे "गणित" इसके भी दस उपविभाग किये जा सकते हैं, यथा—(क) अङ्कगणित (Arithmetic), (ख) बीजगणित (Algebra), (ग) रेखागणित (Geometry), (घ) त्रिकोणमिति (Trigonometry), (ङ) स्थिरशक्ति-गणित (Statics), (च) चलच्छक्तिगणित (Dynamics), (छ) जलशक्तिगणित (Hydrostatics), (ज) चूड़ांशगणित (Conic Sections), (झ) चलराशिकलन (Integral Calculus), (ञ) चलन-कलन (Differential Calculus)। इसी तरह प्रत्येक विषय को, जितने सम्भव हों उतने ही विभागों में, और प्रत्येक विभाग को, जितने सम्भव हों उतने ही, उपविभागों में विभक्त कर लेना चाहिए। पर यह कोई आवश्यकीय बात नहीं है कि प्रत्येक भाग के दस ही विभाग और प्रत्येक विभाग के दस ही उपविभाग

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हों। जितने कम होंगे उतने नम्बर ख़ाली पड़े रहेंगे। अनुभव से ज्ञात होता है कि १० से अधिक होना सम्भव नहीं।

उपर्युक्त नियम के अनुसार अब हमें किसी पुस्तक पर नम्बर लगाने में कुछ भी कठिनाई न होगी। दृष्टान्त के लिए देखिए "रेखागणित" की पुस्तक पर कौन सा नम्बर पड़ेगा? इसका उत्तर इस तरह दिया जायगा—"रेखागणित" प्राकृतिक-विज्ञान-विषय के सातवें विभाग का तीसरा उपविभाग है। प्राकृतिक विज्ञान का नम्बर २०० से आरम्भ होता है, गणित का विभाग नम्बर ६० से आरम्भ होता है; और रेखागणित का उपविभाग नम्बर ३ है। इस कारण रेखागणित की जितनी पुस्तकें होंगी उन सब पर २६३ नम्बर लगेंगे। यदि रेखागणित की चार पुस्तकें आपके पुस्तकालय में हैं तो उन पर यथाक्रम २६३-१, २६३-२, २६३-३, २६३-४ नम्बर पड़ेंगे।

(आगामी संख्या में समाप्य)

सुरेन्द्रनाथसिंह

प्राचीन भारतवर्ष में सिले हुए कपड़े।

प्रश्न है कि भारतवर्ष के लोग, प्राचीन समय में, सिले हुए कपड़े पहनते थे या केवल चादरों और धोतियों से ही शरीर ढाँकते थे? देखने में तो यह प्रश्न सुलभ सा है, पर इस प्रमाण-युग में इसका उत्तर देना कुछ कठिन है। कुछ लोगों का कथन है कि मुसलमानों के आने से पहले यहाँ सिले हुए कपड़ों का रिवाज ही न था। दूसरे लोग यद्यपि इस बात को नहीं मानते तथापि कहते हैं कि—"The art of sewing is of semitic origin" अर्थात् कपड़े सीने की कला का प्रथम प्रादुर्भाव पश्चिम की सेमिटिक जातियों में हुआ था। इस पर मुझे कुछ निवेदन करना है।

आजकल प्रमाण मानने की प्रायः यह पद्धति है कि जो बात जिस ग्रन्थ में न पाई जाय वह उस ग्रन्थ के समय में न थी, ऐसा समझा जाता है। पर इस पद्धति से विचार करने वाले कभी कभी इस बात को भूल जाते हैं कि प्राचीन ग्रन्थ किस निमित्त लिखे गये थे। जिस हेतु से ग्रन्थ लिखा जाता है उस हेतु के अनुकूल बातें यदि उसमें न पाई जायँ तो वे बातें उस समय न थीं, यह मानने में अधिक दोष नहीं। पर जो बातें उस हेतु के अनुकूल न हों, वे यदि उसमें न पाई जायँ तो उनका उस समय अभाव मानना युक्तिसङ्गत नहीं। उदाहरणार्थ, गणित की किसी पुस्तक में किसी माप का वर्णन न हो तो यह कहना अनुचित न होगा कि वह माप उस समय अप्रचलित थी। पर यदि गणित की किसी पुस्तक में किसी शहर का नाम न मिले और इस कारण यदि कोई यह कहने लगे कि उसके लिखे जाने के समय वह शहर बसा ही न था तो ऐसा कहना कहाँ तक न्याय्य होगा। पर बहुत लोग इसी प्रकार का अनुमान करते हैं। कोई बात ऋग्वेद में नहीं पाई जाती। बस वह ऋग्वेद के समय में थी ही नहीं! मानों ऋग्वेद-द्रष्टा ऋषियों ने तत्कालीन परिस्थिति का वर्णन करने के लिए ही ऋग्वेद प्रसिद्ध किया था। जिसे ऋषियों ने यज्ञोपयुक्त देवतास्तुतियें तथा उच्च तात्विक विचारों के लिए गाया उस वेद में यदि कुछ क्षुद्र बातें न पाई जायँ तो आश्चर्य ही क्या? अर्थात् ऋग्वेद में यदि किसी बात का पता न लगे तो यह कहना कि वह बात ऋग्वेद-काल में अज्ञात थी, भ्रममूलक है।

इस विचार-परम्परा से केवल इतना ही सिद्ध होता है कि इस प्रकार का निषेधक अनुमान निकालना ठीक नहीं। तथापि विधायक प्रमाण इससे नहीं मिलता। अतः विधायक प्रमाणों की खोज होनी चाहिए। सीने के विषय में अनेक प्रमाण मिलते हैं। उनसे पाठक जानेंगे कि सीने की कला भारतवर्ष में कब से ज्ञात है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इन प्रमाणों में कालिदास आदि संस्कृत-कवियों के ग्रन्थों से प्रमाण देने का विचार मेरा नहीं। एक तो इन कवियों का काल निश्चित रूप से ज्ञात न होने के कारण वैसे प्रमाणों का इतना उपयोग नहीं। दूसरे इन कवियों में से बहुतेरे ऐसे हैं जिनका काल, भारतवर्ष में मुसलमानों के प्रवेश होने के पश्चात्, सिद्ध है। इस लिए श्रुति-स्मृतियों और पुराणों से ही प्रमाण उद्धृत करना उचित है। पुराणों के काल-निर्णय में मतभेद होने पर भी सब पुराण ईसा की छठी सदी के पूर्व के ही माने जाते हैं। इस लिए यदि पुराणों में सिले हुए कपड़ों का वर्णन मिले तो मुसलमानों के पूर्व से ही भारतवर्ष में सिले हुए कपड़ों का प्रचार सिद्ध हो जायगा।

रामायण, महाभारत इत्यादि ग्रन्थों में 'वेष' शब्द अनेक बार पोशाक के अर्थ में आया है। तथापि आक्षेपकर्त्ता महाशयों का समाधान करने योग्य प्रमाण उनमें मुझे नहीं मिले। हाँ, श्रीमद्भागवत में ऐसा प्रमाण मिलता है। दशम स्कन्ध में जब अक्रूर, कंस के आदेश से, श्रीकृष्णजी को गोपों सहित मथुरा नगरी में ले गये तब एक रजक से श्रीकृष्णजी ने राजवस्त्र छीन लिये। श्रीमद्भागवतकार लिखते हैं कि उस समय वहाँ पर एक वायक आया। उसने कृष्ण-बलराम की वेष-कल्पना की—

ततस्तु वायकः प्रीतस्तयोर्वेषमकल्पयत्।
विचित्रवर्णैः शैलेयैराकल्पैरनुरूपतः।

इस श्लोक में वायक शब्द का अर्थ दर्ज़ी के सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता। अर्थात् श्रीमद्-भागवत के लिखे जाने के समय दर्ज़ी थे तथा सिले हुए कपड़े लोग पहनते थे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। महाभारत में लिखित दुर्योधन की यह उक्ति प्रसिद्ध ही है—

यावद्धि सूच्यास्तीक्ष्णाया विध्येदग्रेण मारिष।
तावदप्यपरित्याज्यं भूमेर्नः पाण्डवान्प्रति॥

यदि उस समय सीने की कला अज्ञात होती तो सूची का काम ही क्या था? "सीव्येत्सूक्ष्मेण सूत्रेण" यह पंक्ति सुश्रुत में भी पाई जाती है। सूई, डोरा, सीना, दर्ज़ी—ये चारों शब्द स्पष्टतया प्रमाणित करते हैं कि इस देश में मुसलमानों का पदार्पण होने के बहुत पहले से ही हम लोग सीना जानते थे और सिले हुए कपड़े पहनते थे।

एक और दृष्टि से देखा जाय तो मुसलमान लोग इस कला के प्रवर्तक हो ही नहीं सकते। Necessity is the mother of invention—अर्थात् आवश्यकता पड़ने पर ही नई बातें सूझती हैं। ऋतुमान के ख़याल से देखा जाय तो शीत स्थानों में रहने वालों को सिले हुए कपड़ों की जितनी आवश्यकता रहती है उतनी उष्ण स्थानों में रहने वालों को नहीं। इससे भी मक्का और मदीना जैसे उष्ण स्थानों के निवासियों को सिले हुए कपड़े पहनने की आवश्यकता प्रतीत होना और हिमालय के निकटवर्ती प्रान्तों के निवासी आर्यों को न होना, अनुमान-गम्य नहीं। अतएव अनुमान कहता है कि मुसलमानों ने यह प्रथा अन्य शीतदेशीय लोगों से ही सीखी होगी।

अब पुराणों से प्राचीन माने गये स्मृति-ग्रन्थों को देखिए। मनुस्मृति के चतुर्थाध्याय में वर्ज्यान्न-प्रकरण है। उसमें लिखा है कि किन किन जातियों का अन्न सेवन करना ठीक नहीं। इस अध्याय के २१४ वें श्लोक में मनुजी लिखते हैं—"शैलूष-तुन्नवायान्नं कृतघ्नस्यान्नमेव च"। इस श्लोक की टीका में कुल्लूक भट्ट ने 'तुन्नवायः सौचिकः' लिखा है। अर्थात् सूची से उपजीविका करने वाला सौचिक कहाता है। इससे यह स्पष्ट ही जान पड़ता है कि मनुस्मृति लिखी जाने के समय दर्ज़ी का पेशा करने वाले लोग भारतवर्ष में थे। यदि लोग सिले हुए कपड़े न पहनते तो दर्ज़ियों का काम कैसे चलता? अर्थात् मनुस्मृति के समय में लोग सिले हुए कपड़े अवश्य पहनते थे।

श्रुति में मन्त्र और ब्राह्मण दो भाग हैं। मन्त्रों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में देवतास्तुति और ब्राह्मणों में मन्त्रविनियोग है। तैत्तिरीय-ब्राह्मण में केवल सूची का वर्णन ही नहीं है, सूइयों के तीन प्रकार भी बताये गये हैं। तृतीयाष्टक में नवमाध्याय के षष्ठानुवाक में लिखा है—

त्रय्यः सूच्यो भवन्ति। अयस्मय्यो रजतो हरिण्यः।

अर्थात्—सूइयाँ तीन प्रकार की होती हैं; लोहे की, चाँदी की और सोने की। चाँदी तथा सोने की सूइयाँ भी जिस समय काम में आती थीं उस समय सीने की कला कितनी उन्नत रही होगी, इसका विचार पाठक स्वयं कर सकते हैं। जैमिनीयोपनिषद्ब्राह्मण में एक ऋषि का वर्णन है। उसके शरीर पर शामूल अर्थात् ऊनी कुर्ता था। अर्थात् ब्राह्मण-काल में सीने की कला का केवल अप्रत्यक्ष ही वर्णन नहीं, किन्तु सिले हुए कपड़े का नाम भी मिलता है।

अब ईसा के ३००० वर्ष पहले के ऋग्वेद-मन्त्रों में क्या प्रमाण मिलते हैं, यह भी देखना चाहिए। प्रथमाष्टक में द्वितीयाध्याय के चौंतीसवें अनुवाक की पाँचवीं ऋचा में लिखा है—

त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं वर्मेव स्यूतं परिपासि विश्वतः।

इसी प्रकार द्वितीयाष्टक के सप्तमाध्याय के पन्द्रहवें वर्ग की चौथी ऋचा में लिखा है—

सीव्यत्वपः सूच्या च्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थम्।

इसके भाष्य में सायणाचार्य स्पष्ट लिखते हैं कि "यथा वस्त्रादिकं सूच्या स्यूतं चिरं तिष्ठति एवमिदं करोतु"—इसी प्रकार के और भी प्रमाण दिये जा सकते हैं।

पूर्वोक्त विवेचन से पाठकों का सन्देह दूर हो गया होगा। सिले हुए भिन्न भिन्न वस्त्रों के कितने ही नाम ऋग्वेद में पाये जाते हैं। अब यह देखिए, ऊनी कुर्ते को शामूल कहते थे और रेशमी कुर्ते को तार्प्य। जो कपड़ा भीतर से पहना जाता था उसे नीवि और जो ऊपर से चोगा सा पहना जाता था उसे अधिवास, अत्क या द्रापि कहते थे। कपड़े प्रायः रङ्गीन होते थे। रङ्गहीन श्वेत कपड़ों को पाण्ड्व कहते थे। वायु से बचाव के लिए जो कपड़े पहने जाते थे वे वातपान नाम से प्रसिद्ध थे। इसके सिवा कई कपड़ों पर बेल-बूटे निकाले जाते थे, जिनका नाम पेशस् था। इतने प्रकार के भिन्न भिन्न कपड़े जिस समय प्रचलित थे उस समय सीने की कला क्या भारतवर्ष में अज्ञात थी? इसका विचार पाठक स्वयं कर सकेंगे।

उर्दू के सामयिक पत्र "दिलगुदाज़" के सम्पादक, मौलाना मुहम्मद अब्दुल हलीम, और उनके साथी शायद अब भी यही कहें कि मुसलमानों के आगमन के पहले भारतवासी सिले हुए कपड़ों से महरूम थे! उन्हें वे मुसलमानों ही की बदौलत नसीब हुए हैं!!!

हरि रामचन्द्र दिवेकर

मेघदूत का पद्यात्मक अनुवाद।

[पूर्व-मेघ के थोड़े से नमूने]

(१)

मूल—कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारप्रमत्तः
शापेनास्तङ्गमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्त्तुः।
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु।

भावार्थ—यक्षाधिप कुबेर के यहाँ एक यक्ष किसी पद पर था। वह अपनी प्रियतमा पत्नी के प्रेम में यहाँ तक डूबा था कि उसे अपने तनबदन की सुध न थी। इसीसे उसे अपने कर्त्तव्य का ध्यान न रहता था। उसकी इस लापरवाही—इस मनमानी—पर कुबेर को बड़ा क्रोध आया। उन्होंने उसे शाप दिया। कहा कि—जा जिसके प्रेम में फँस कर तूने मेरे काम में इतनी बेख़बरी की है उससे तुझे एक वर्ष पृथक् रहना पड़ेगा। यह दण्ड उसे बहुत खला। जिसे वह क्षण भर के लिए बड़े कष्ट से छोड़ता था उसी से साल भर अलग रहना पड़ा। इस तरह पदच्युत होकर वह बेचारा रामगिरि (अर्थात् चित्रकूट) पर आया और वहीं, कभी यहाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कभी वहाँ, रहने लगा। संयोग-वश जहाँ जहाँ वह डेरा डालता था वहाँ वहाँ छायादार वृक्ष और जलाशय उसे मिल जाते थे। जलाशय भी कैसे, जिनका जल सीताजी के स्नान से पवित्र हो चुका था। इससे वन में भी रामचन्द्र के साथ सीता का रहना स्मरण करके उसकी विरहाग्नि और भी भभक उठती थी ॥ १ ॥

पद्यानुवाद—एक यक्ष की नननानी पर यक्षाधिप ने कोप किया ;
उसे साल भर प्रिया-विरह का कारण दारुण शाप दिया।
उस दुखिया ने चित्रकूट पर इधर उधर डेरे डाले ;
सीता के मज्जन से शुचि जल और घनी छाया वाले ॥१॥

(२)

मूल—तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी
नीत्वा मासान् कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः।
आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श।

भावार्थ—उस पर्वत पर उसने जैसे तैसे कुछ महीने, अनुमानतः आठ महीने, काटे। विरह-व्यथा के मारे दुबला तो वह इतना हो गया था कि उसकी कलाई से सोने का कड़ा खिसक कर गिर गया; पर उसे इसकी कुछ ख़बर ही न हुई। अब असाढ़ का महीना लगा। सामने शिखर पर बादल घिर आया। मेघ का वह मनोहर रूप उस विरही को डरावना सा मालूम हुआ। उसे ज्ञात हुआ जैसे कोई हाथी खेत में मस्ती से अँकड़ रहा हो या दाँत मार मार कर ढूह ढाह रहा हो ॥ २ ॥

पद्यानुवाद—उस पर्वत पर उस कामी का आठ मास रोते बीता ;
कर होने से कञ्चन-कङ्कण गिर कर हाय हुआ रीता।
अब असाढ़ आते ही उसने चोटी पर बादल देखा—
क्रीडा में मुक्त ढूह ढाहते गज के तुल्य उसे लेखा ॥२॥

(३)

मूल—तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतो-
रन्तर्बाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ।
मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्तिचेतः
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे।

भावार्थ—जो कुछ हो, इस मेघ के दर्शन से उसे कुछ उत्कण्ठा सी हुई। उसने अपने को सँभाला और ज्यों त्यों करके खड़ा हुआ। कुछ कहना चाहता ही था कि प्रिया के स्मरण ने उसे बे-चैन कर दिया। उसका जी भर आया। कण्ठ रुँध गया। पीछे, बड़ी देर तक खड़ा खड़ा न जाने क्या सोचता रहा। सच है, मेघों को देख कर जब संयोगी भी कुछ अनमने हो जाते हैं; उनकी भी मनोवृत्ति बदल जाती है; तब भला उन वियोगियों की क्या दशा होगी जो सदा से आश्लेष-रस के रसिक रह चुके हैं ॥ ३ ॥

पद्यानुवाद—उसे देख कर उत्कण्ठित हो जैसे तैसे खड़ा हुआ ;
जी भर आया; बड़ी देर तक रहा सोच में पड़ा हुआ।
मेघों का अवलोकन कर जब सुखी अनमने हो जाते,
आलिङ्गन के रसिक विरह में फिर क्या दुःख नहीं पाते ॥३॥

(४)

मूल—प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवनालम्बनार्थो
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन् प्रवृत्तिम्।
स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनैः स्वागतं व्याजहार।

भावार्थ—श्रावण का महीना निकट है। ऐसे समय में अपनी प्रियतमा की जीवन-रक्षा के लिए उसने मेघ-द्वारा कुशल-सन्देश कहलाने का विचार किया। सन्देश कहने के पहले दूत की पूजा होनी चाहिए। अतः उसने भी कुटज या कुरैया के ताज़े ताज़े फूल तोड़ कर पहले मेघ को अर्घ दिया, पश्चात् प्रसन्न होकर मीठी मीठी बातें कह कर उसका स्वागत किया,—बड़ी आव भगत की ॥ ४ ॥

पद्यानुवाद—सावन के पहले बादल से कुशल-संदेसा कहलाना,
दयिता की जीवन-रक्षा के हेतु उचित उसने जाना।
ताज़े फूल कुटज के लेकर पहले उसको अर्घ दिया ;
फिर प्रसन्न हो प्रिय वचनों से उसका शिष्टाचार किया ॥४॥

(५)

मू०—धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्त्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।

भावार्थ—कहाँ तो भाफ़, आग, पानी और पवन के संयोग से बना हुआ अचेतन मेघ और कहाँ चतुर दूतों के द्वारा कहलाने लायक़ सँदेसा! पागलपन की हद हो गई। बच्चा भी दोनों का अन्तर समझ सकता है। पर सन्देश भेजने की उत्कण्ठा ने अथवा विरह-व्यथा ने उस यक्ष की अक़्ल पर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परदा डाल दिया। बिना विचार किये ही उसने मेघ से याचना कर डाली। कामियों को भला जड़-चेतन की पहचान कहाँ! उनकी तो प्रकृति ही कुछ और की और हो जाती है—"आरत के चित रहे न चेतू।" ॥ ५ ॥

पद्यानुवाद—भाफ़, पवन, पानी, पावक का बना मेघ का जाल कहाँ!
और चतुर दूतों के द्वारा कहलाने का हाल कहाँ!
बिना विचारे इसे यक्ष ने बड़े चाव से की बिनती;
कामी लोग नहीं कर सकते जड़चेतन की कुछ गिनती ॥५॥

(७)

मूल—सन्तप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद प्रियायाः
सन्देशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य।
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां
बाह्योद्यानस्थितिहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या।

भावार्थ—हे मेघ, तुम सन्तप्तों के शरण हो। मैं इस समय कुबेर के कोप से वियोग का यह दुःख झेल रहा हूँ। तुम मेरा सन्देश मेरी प्रियतमा तक पहुँचा दो। तुमको और कहीं नहीं, अलका जाना पड़ेगा। उसकी पहचान सुन लो। बाहर के उद्यान में विराजमान भगवान् शङ्कर के ललाट पर देदीप्यमान चन्द्रमा की किरणों से अलका के महल सदा ही चमचमाया करते हैं ॥ ७ ॥

पद्यानुवाद—सन्तप्तों के शरण तुम्हीं हो कहना प्यारी से सन्देश;
(मुझे मिला है धनद-कोप के कारण यह वियोग का क्लेश)
यक्षपुरी अलका को जाना जहाँ महल कर रही उदोत—
बाहर के उपवन में बैठे भव के भालचन्द्र की जोत ॥७॥

(८)

मूल—त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसन्त्यः।
कः सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां
न स्यादन्योऽप्यहमिवजनो यः पराधीनवृत्तिः।

भावार्थ—जब तुम वायुमार्ग अर्थात् आकाश से चलोगे तब पथिकों की विरहिणी स्त्रियाँ, बिखरे हुए बालों को अपने मुँह पर से हटा हटा कर, तुमको देखेंगी। तुम्हारे दर्शन से उन्हें बड़ा धैर्य्य होगा। वे समझ जायँगी कि वर्षाकाल आ गया; अब हमारे प्रियतम हमसे मिलेंगे। बात ठीक है, क्योंकि तुम्हारे घिर आने पर भला ऐसा कौन वज्र-हृदय निर्दय होगा जो अपनी प्रिया को भूल जाय? हाँ, यह अवश्य है कि उसको मेरी सी पराधीनता न हो ॥ ८ ॥

पद्यानुवाद—आँखों पर से बाल हटा कर देख हवा पर तुझे सवार,
पथिक-रमणियाँ धैर्य धरेंगी प्रिय जन का आगमन विचार।
कौन तुम्हारे घिर आने पर सकता है विरहिन को भूल?
यदि न हमारे ऐसी उसको पराधीनता हो दुख-मूल ॥८॥

(९)

मूल—मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः।
गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः।

भावार्थ—देखो ये कैसे शुभ शकुन हो रहे हैं। यह अनुकूल पवन तुमको सीधे ले जा रहा है और बाईं ओर बैठा यह पपीहा मस्ती से चहचहा रहा है। यही नहीं, गर्भाधान के लिए आनन्द से पाँत बाध कर उड़ती हुई बगलियाँ भी, आकाश में, तुम्हारा सन्मान करेंगी; क्योंकि तुम्हारा रूप इनकी आँखों को बहुत प्यारा है ॥ ९ ॥

पद्यानुवाद—मन्द मन्द अनुकूल पवन यह तुझको सीधे बहा रहा;
बैठा बाईं ओर पपीहा मत्त हुआ चहचहा रहा।
पाँत बाँध कर उड़ी बगलियाँ गर्भाधान-समय को जान,
देख देख कर रूप मनोहर तेरा बहुत करेंगी मान ॥९॥

(१०)

मूल—ताञ्चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नी-
मव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम्।
आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्यःपाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगे रुणद्धि।

भावार्थ—तुम्हारा जाना व्यर्थ न होगा। तुम यदि बीच में न रुकोगे तो अवश्य ही तुमको अपनी भाभी के दर्शन होंगे। उस पतिव्रता ने मुझसे मिलने की आशा से दिन गिन गिन कर किसी प्रकार अपने जीवन की रक्षा की होगी। जानते हो, नारियों का प्रेममय जीवन कोमल-कुसुम के समान होता है। वियोग के ताप से मुरझा कर जब वह गिरने लगता है तब आशारूप वृन्त ही उसे रोकता है। जीवन-कुसुम को सँभालने के लिए आशा ही ढोंढी का काम करती है ॥ १० ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पद्यानुवाद—दिन गिनने में लगी हुई वह पतिव्रता भावज तेरी,
जीती ही दिखलाई देगी जो न हुई तुझको देरी।
कुसुमसदृश रमणी का जीवन जब वियोग में कुम्हलाता,
आशारूप वृन्त के कारण गिरते गिरते रह जाता ॥१०॥

(११)

मूल—कर्त्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यां
तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः।
आकैलासाद् बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः
संपत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः।

भावार्थ—तुम्हारा गर्जना भी बड़ा काम करता है। उसी की कृपा से खुमी, छत्रक, या रामछाता उपजता है। उससे लोग सगुन विचारते हैं। उसे देख कर वे समझ जाते हैं कि इस साल कृषि फलवती होगी—फ़सल अच्छी होगी। तेरा यही श्रुतिमधुर गर्जन जब हंस सुनेंगे तब उन्हें मानस-सरोवर की सुध आ जायगी। वहाँ जाने की उन्हें बड़ी उत्कण्ठा होगी। क्योंकि वर्षाकाल में हंस वहीं जाया करते हैं। चलने के समय वे कमलनाल के कोमल कोमल टुकड़ों को राहख़र्च के लिए अपनी चोंचों में दाब कर बराबर कैलास तक तेरे साथ ही साथ उड़ते चले जायँगे। यों तुझे साथी भी मिल जायँगे ॥ ११ ॥

पद्यानुवाद—छत्रक उपजा कर धरती को शस्यशालिनी जो करता,
श्रवण-सुखद वह तेरा गर्जन जब हंसों का मन हरता।
तब पाथेय मृणाल-जाल के खण्डों का वे ले लेकर,
मानसगामी नभ में होंगे हरगिरि तक तेरे सहचर ॥११॥

(१५)

मूल—रत्नच्छायव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत् पुरस्तात्
वल्मीकाग्रात् प्रभवति धनुःखण्डमाखण्डलस्य।
येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः।

भावार्थ—देख, सामने कैसा अच्छा दृश्य है। एक ओर बादल और दूसरी ओर धूप के कारण यह इन्द्र-धनुष निकल आया है। इसकी छवि कैसी भली लगती है। जान पड़ता है, यह और कुछ नहीं; केवल बहुत से रत्नों—पन्ने, नीलम, मानिक, पोखराज, लहसनियाँ आदि—की रङ्गीन किरनें यहाँ इकट्ठी हो गई हैं और चमक रही हैं। इसके सम्पर्क से तेरे इस साँवले शरीर की वही शोभा होगी जो सिर पर मोरपङ्ख धारण करने वाले कृष्णचन्द्र की होती है ॥ १५ ॥

पद्यानुवाद—धूप और बदली के कारण देख सामने दिखलाता,
रत्नों के छविमण्डल सा यह इन्द्र-धनुष शोभा पाता।
इससे रुचिर साँवली सूरत तेरी रङ्ग जमावेगी;
मोरपङ्खधर कृष्ण-चन्द्र के तन की सुखना पावेगी ॥१५॥

(१६)

मूल—त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः।
सद्यः-सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं
किञ्चित्पश्चाद् व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण॥

भावार्थ—गाँव की स्त्रियाँ भोली भाली होती हैं। उन्हें भौंहें मरोड़ना या तिरछी नज़र से देखना नहीं आता। वे इतना ही जानती हैं कि खेती के विधाता तुम्हीं हो। इसी नाते वे तुमको नेह भरी भोली चितवन से आदर-पूर्वक देखेंगी। उनसे मिल कर तुम माल नामक उन्नत भूमि पर घिर जाना। तुरन्त ही जुतने के कारण उस भूमि से सोंधी सोंधी सुगन्ध आ रही होगी। जी चाहे तो थोड़ी देर वहाँ ठहर जाना। पश्चात्, बरसने से हलका हो जाने पर, अपनी चाल कुछ तेज़ कर लेना और फिर उत्तर को ही चल देना ॥ १६ ॥

पद्यानुवाद—गाँवों की नारियाँ समझ कर तुझको खेती का आधार,
नेह भरी भोली चितवन से देख करेंगी तेरा प्यार।
नये जुते खेतों से सोंधी माल भूमि पर घिर जाना;
थोड़ी देर ठहर कर झटपट उत्तर को ही फिर जाना ॥१६॥

(१७)

मूल—त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना
वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः।
न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किंपुनर्यस्तथोच्चैः।

भावार्थ—आगे चल कर तुम्हें आम्रकूट नामक पर्वत मिलेगा। तुमने अपनी धारा से उसकी वनाग्नि कई बार शान्त कर दी है। अतः तुम्हारे ऐसे उपकारी को जब वह थका-माँदा देखेगा तब बड़ा आदर-सत्कार करेगा; तुम्हें अपने सिर माथे पर ले लेगा। मित्र के आने पर कृपण भी, उसके पहले उपकारों का स्मरण करके, उसकी सेवा-शुश्रूषा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

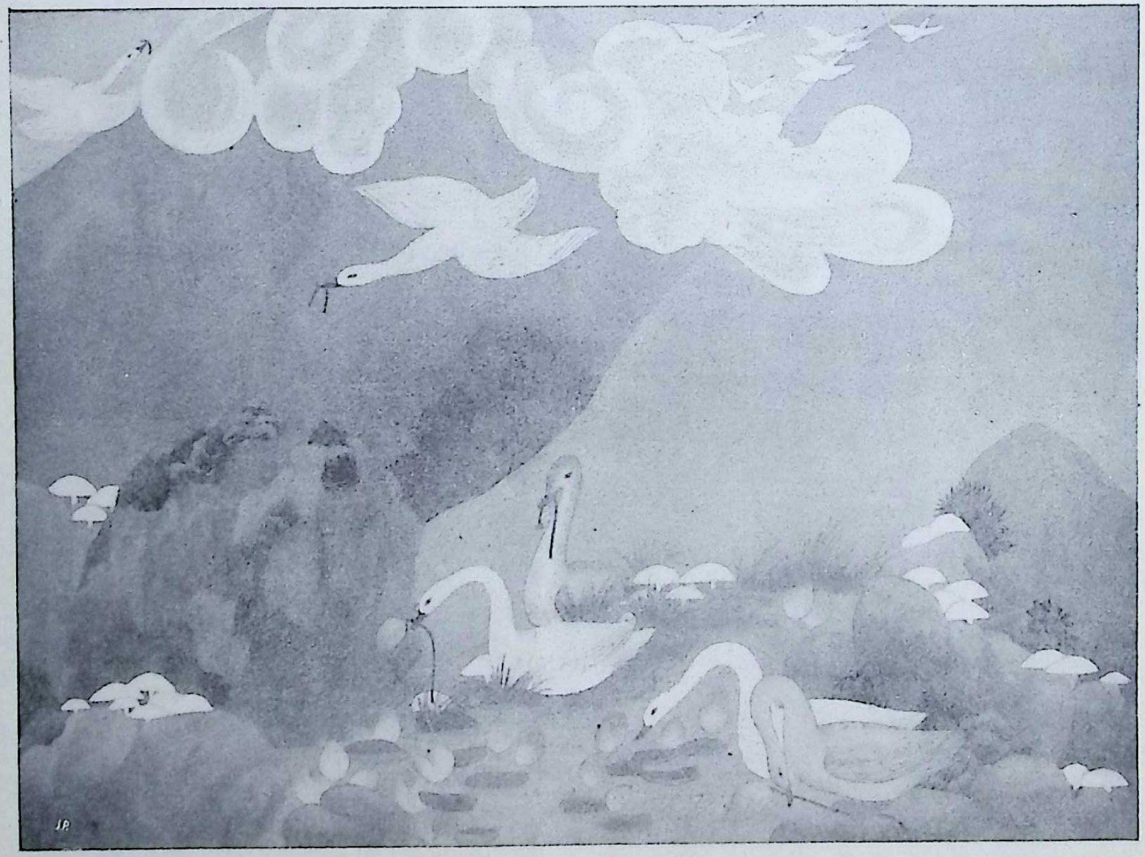

मानसगामी राजहंस ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से मुँह नहीं मोड़ता—यथासाध्य उसकी मिहमानी करता है। जब कृपण का यह हाल है तब वह उन्नतात्मा शैल कब इस प्रक्रिया से हटने लगा ॥ १७ ॥

पद्यानुवाद—बरस बरस कर किया आपने जिसकी ज्वालाओं को शान्त,
आम्रकूट वह सिर माथे पर लेगा देख आपको क्लान्त।
नहीं कृपण भी पीछे हटता पहले के उपकार विचार;
भाग्य-प्राप्त मित्र-सेवा से फिर कैसे वह उच्च उदार ॥१७॥

केशवप्रसाद मिश्र

ऐतिहासिक हिन्दू-सम्राट्।

[३]

सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य।

इस राजा का असली नाम चन्द्रगुप्त द्वितीय था; परन्तु यह विक्रमादित्य के ही नाम से विख्यात है। यह ३७५ ईसवी में सिंहासनारूढ़ हुआ। इसने मालवा और उज्जैन प्रान्तों को अपने राज्य में मिला लिया और सौराष्ट्रदेश (काठियावाड़) के शक-नरेशों पर विजय प्राप्त किया। इस तरह इसका राज्य पश्चिम में अरब के समुद्र तक फैल गया। अयोध्या इसकी राजधानी थी। इसका शासन-काल ३७५—४१३ ईसवी है। इसके समय में भारत की प्रखर उन्नति हुई। यह सारे गुप्तवंशीय राजाओं में श्रेष्ठ था। ईसा के ५८ वर्ष पहले से विक्रम नाम का जो संवत् प्रचलित है उसका सम्बन्ध इस सम्राट् के साथ कुछ नहीं मालूम होता। विक्रमादित्य नाम के कई राजे हो गये हैं। शायद यह संवत् उनमें से किसी राजा का चलाया हुआ हो। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने ३९० ईसवी में उज्जैन पर अधिकार जमाया। परन्तु विक्रम-संवत् ईसा के ५८ वर्ष पहले से प्रचलित है।

दिल्ली में एक लोहे का स्तम्भ है। उससे इस सम्राट् की विजय-विभूति का पता लगता है।

इसी चन्द्रगुप्त के समय में फ़हीन नामक एक बौद्ध यात्री चीन से भारत आया। वह ४०६—११ ईसवी तक हिन्दुस्तान में रहा। उसने विक्रमादित्य के समय का हाल लिखा है। वह लिखता है—

"पाटलिपुत्र इस समय भी बहुत फला-फूला नगर है। इसके चारों तरफ़ और भी बड़े बड़े नगर हैं। उनमें बड़े दानी और परोपकारी मनुष्य रहते हैं। यहाँ दो विशाल विहार हैं, जिनमें छः सात सौ विद्वान् साधु रहते हैं। उनके पास दूर दूर के धार्मिक मनुष्य आया करते हैं। बौद्ध मत के उत्सव ख़ूब धूम-धाम से होते हैं। इस समय का राज्य-शासन धर्म्म-प्राणित और नीति-संयुक्त है। मनुष्यों को न तो पुलिस ही सताती है, न उनसे दुःखदायी कर ही लिये जाते हैं, और न उनके कहीं आने जाने की रोक टोक ही है। पृथ्वी की पैदावार पर कर लिया जाता है। यही राज्य की आमदनी है। कर पैदावार के परिमाण के अनुसार लिया जाता है। राजदण्ड दया-पूर्ण है। अर्थात् अपराधियों को सज़ा बे-रहमी से नहीं दी जाती—बहुधा जुरमाने की सज़ा ही दी जाती है। परन्तु जो उपद्रवी मनुष्य डाका डालते और अत्याचार करते हैं, उनका दाहना हाथ कटवा दिया जाता है। फाँसी और काठ डालने की सज़ा नहीं दी जाती। राज्य के कर्मचारियों को मासिक वेतन मिलता है। कोई भला आदमी शिकार नहीं करता और न कोई सत्पुरुष मांस बेचता है। ये दोनों काम नीच जातियों ही के लोग करते हैं। सभी भले आदमी मांस, प्याज़, लहसुन आदि खाने से परहेज़ करते हैं। वे मदिरा भी नहीं छूते। इसलिए नगरों में न क़साइयों की दूकानें दिखाई देती हैं और न शराबख़ाने नज़र आते हैं। कौड़ी से लगा कर तांबे, चाँदी और सोने तक के सिक्के चलते हैं। राज्य में इतना अमन-चैन है कि मैंने मनचाही यात्रा की; पर किसी ने ज़रा भी रोक टोक न की। धर्म-कार्य्यों के लिए प्रजा जो कुछ धन-दान करती है उसका प्रबन्ध राजा की तरफ़ से बड़ा अच्छा है। पण्डे बड़े धनी हैं। राज्य की तरफ़ से भी उनके लिए अच्छा इन्तज़ाम है। संस्कृत-भाषा का बड़ा प्रचार है।"

गुप्तवंशीय नरेशों के समय में—विशेष करके सम्राट् समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में—देश की यथेष्ट उन्नति हुई थी। ये दोनों महाराज बड़े विद्या-सम्पन्न, कलाकुशल, नीतिज्ञ, प्रभावशाली और ऐश्वर्यवान् थे। इनके महल बड़े सुन्दर और विशाल थे। राजसभायें भी बड़ी प्रभावशालिनी थीं। सभाओं में सभी विषय के धुरन्धर विद्वान् और पण्डित रहते थे, जिनका बड़ा आदर होता था

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और जिन्हें बहुत धन दिया जाता था। विद्या, विज्ञान और विविध प्रकार की कलाओं का ख़ूब प्रचार था। संसार-विख्यात महाकवि कालिदास इसी समय हो गये हैं। उन्होंने इन्हीं राजसभाओं को विभूषित किया था। गुप्तवंशी नरेशों के समय में शिल्पकला की ऐसी समुन्नति हुई थी कि तत्कालीन कारीगरी की जो वस्तुयें बच गई हैं वे हिन्दुओं की शिल्पकला की अच्छी परिचायक हैं। उस समय चित्रण-कला का भी ख़ूब विकास हुआ था। भवन-निर्माण-कला तो इतनी उच्चता को प्राप्त हो गई थी कि कहते नहीं बनता। उस समय के जो टूटे फूटे भवन कहीं कहीं बच रहे हैं वे उस कला के आदर्श हैं। मुसलमानों ने अनेक हिन्दू-मन्दिर, मठ आदि तोड़ फोड़ डाले। इससे उस काल की बहुत कम चीज़ें बच पाई हैं। समुद्र-गुप्त और विक्रमादित्य के चलाये सिक्के बड़े सुन्दर थे। उन पर की गई कारीगरी विचित्र है। गुप्त-नरेशों के समय में सङ्गीत-विद्या भी ख़ूब उन्नत थी। वे स्वयं भी इस विद्या में बड़े निपुण थे। गणित और ज्योतिष की भी बड़ी उन्नति हुई थी। लोकप्रसिद्ध ज्योतिषी आर्यभट्ट इसी समय में हुए थे। सारांश यह कि उस समय सभी प्रकार की धार्मिक और मानसिक समुन्नति हुई थी। गुप्त-नरेशों के द्वारा शताब्दियों तक निरन्तर विद्या का प्रचार हुआ। उन्होंने बलशाली सम्राट् बन कर पाश्चात्य और प्राच्य विचारों का सम्मेलन किया। तत्कालीन सभ्यता-वृद्धि का यही प्रधान कारण था। उस समय चीन देश से कई राजदूत (एलची) भारत आये थे।

मिस्र देश के अलेगजेन्ड्रिया नगर के द्वारा रूम देश के तत्कालीन बादशाहों से भी गुप्त-नरेशों का सम्बन्ध था; क्योंकि विक्रमादित्य के समय में भारतीय राज्य की सीमा बड़ी लम्बी-चौड़ी थी। इसी समय हिन्दू-धर्म्म का पुनरुत्थान और उसका पुनः प्रचार हुआ। गुप्तवंशी राजा विष्णु-भगवान् के उपासक थे। वे दूसरे धर्मवालों के साथ भी बड़ी सहानुभूति रखते थे। इस समय बौद्ध मत अवनति की राह पर था और हिन्दू-धर्म का उठाव बड़े ज़ोरो-शोर से हो रहा था। इसका कारण यह मालूम होता है कि बौद्ध मत के समय में पाली-भाषा का प्रचार था और गुप्त-नरेशों के समय में संस्कृत-भाषा का। पुस्तकों, शिलालेखों और अन्य काग़ज़-पत्रों में संस्कृत-भाषा ही प्रयुक्त होती थी। प्राकृत-भाषा का प्रयोग न होता था। इन नरेशों के सिक्कों पर लक्ष्मीजी की मूर्त्ति खुदी हुई है।

इस समय अनेक विद्याओं और कलाओं का विकास हुआ। व्यापार ने भी बड़ी उन्नति की। अमरावती के स्तूप, सारनाथ (बनारस) के स्तूप, नेपाल के बड़े बड़े स्तूप, और बुद्ध-गया का विशाल मन्दिर इस समय की भवन-निर्माण-विद्या का परिचय दे रहे हैं। बुद्ध की बड़ी बड़ी मूर्तियाँ और हिन्दू-देवताओं की प्रतिमायें जो इस समय पृथ्वी के पेट से खोद कर निकाली गई हैं तत्कालीन शिल्प-कला के उत्तम प्रमाण हैं। इलोरा और अजन्ता की गुफायें, जो इन राजाओं के सौ वर्ष पीछे बनी थीं, संसार में सुन्दरता और कारीगरी के लिए अपना सानी नहीं रखतीं। नालन्द के विशाल विद्यालय में १०,००० विद्यार्थी रह सकते थे। उसका इसी समय जीर्णोद्धार हुआ। प्राचीन गुफ़ाओं में जो चित्र अङ्कित हुए मिले हैं वे चित्र-कला के उत्तम आदर्श हैं। गुप्त-वंशीय महाराजाओं का विष्णु-भगवान् का उपासक होना, उनके सिक्कों पर लक्ष्मी की मूर्ति का खुदा रहना, उनके नाम के पीछे गुप्त उपाधि का रहना, उनके समय में व्यापारिक उन्नति का होना, देश में निरन्तर सुख-शान्ति का वास रहना, ऐसी ऐसी कितनी ही बातें हैं जिनसे सूचित होता है कि ये महाराज वैश्य थे। गुप्तवंश वैश्य ही था। जो जो प्रमाण इन राजाओं के विषय में मिले हैं वे इनके वैश्य होने की पुष्टि करते हैं। इससे ज्ञात होता है कि वैश्यों में भी बड़े बड़े प्रतापी, प्रभावशाली, विद्वान्, कलाकुशल, धर्मज्ञ और सदाचारी सम्राट् हो गये हैं।

सम्राट् श्रीहर्ष।

यह सम्राट् श्रीहर्ष, हर्षवर्द्धन, शीलादित्य आदि कई नामों से प्रसिद्ध है। इसके सिंहासनारूढ़ होने का काल ६०६ ईसवी है। यह थानेश्वर का राजा था। राज्याभिषेक के पश्चात् छः वर्षों में ही इसने अपने राज्य की सीमा विस्तृत कर दी। इसने समस्त उत्तरी हिन्दुस्तान पर अपना अधिकार जमा लिया। पश्चिम में काठियावाड़ और गुजरात को और पूर्व में आसाम और बङ्गाल को इसने अपने अधीन कर लिया। इसकी राजधानी कन्नौज थी। दक्षिण में उस समय चालुक्य-वंश का महाप्रतापी राजा पुलकसिंह (पुलकेशिन्) द्वितीय राज्य करता था। वह बड़ी कठिनाई से श्रीहर्ष को दक्षिण में आने से रोक सका। तथापि हर्ष का राज्य नर्मदा नदी तक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

फैल ही गया। महाराज हर्ष का देहान्त सन् ६४७ ईसवी में हुआ।

उसके समय ह्वेनचांग नामक एक चीनी यात्री भारत में आया था। वह सन् ६२९ से ६४५ ईसवी तक यहाँ रहा। उसने हिन्दुस्तान के प्रायः सभी स्थानों में भ्रमण किया। जो जो बातें उसने देखीं उन सबको उसने एक पुस्तक में विस्तार-पूर्वक लिखा। यह पुस्तक बड़े काम की है; क्योंकि इससे उस समय की भारतीय दशा का ज्ञान होता है। ह्वेनचांग महाराज श्रीहर्ष का मित्र हो गया था। उसके बौद्धोपदेशों के कारण बौद्धमत की ओर भी हर्ष का झुकाव पाया जाता है। इस यात्री की भ्रमण-पुस्तक का जो अनुवाद अँगरेज़ी में हुआ है उससे ज्ञात होता है कि श्रीहर्ष बड़ा प्रतापी राजा था। वह स्वयं राज्य में घूम घूम कर अपने कर्म्मचारियों पर निगाह रखता था। उसका दौरा केवल वर्षा-ऋतु में ही बन्द रहता था। उसके समय में फ़ौजदारी क़ानून कड़ा था। राज्य में अखण्ड शान्ति थी। यद्यपि हिन्दू-धर्म्म का पुनरुत्थान हो गया था तथापि बौद्ध मत का भी प्रचार था। हर्ष सभी धर्मों का आदर करता था। शिव, सूर्य्य और बुद्ध भगवान् की बारी बारी से आराधना करता था। हर्ष के समय में कन्नौज में एक बड़ी विशाल सभा हुई। उसमें धर्म-विषय पर शास्त्रार्थ हुआ। सभा में आसाम से लेकर काठियावाड़ तक के नरेश आये थे, जो हर्ष के अधीन थे। कोई २० राजा उपस्थित हुए थे। इस समय पाटलिपुत्र की दशा बहुत बुरी थी। श्रीहर्ष ने कन्नौज को सुन्दर बनाने में बहुत धन व्यय किया। बड़े बड़े विशाल भवन बनवाये। यह राजा प्रत्येक पाँचवें वर्ष तीर्थराज प्रयाग के गङ्गा-यमुना-सङ्गम पर अपने कोष की समस्त धन-सम्पत्ति भिन्न भिन्न धर्मावलम्बियों को दान कर डालता था।

इस अवसर पर कन्नौज-राजधानी के सभी प्रतिष्ठित मनुष्य प्रयाग आया करते थे। यह मोक्षोत्सव बड़े समारोह से सम्पन्न होता था। पूर्वोक्त चीनी यात्री ऐसे छठे उत्सव के अवसर पर उपस्थित था। उस अवसर पर पाँच लाख मनुष्य एकत्र हुए थे और २० राजा श्रीहर्ष के साथ आये थे। पहले दिन बुद्ध-भगवान् की मूर्ति निर्माण करके पूजा की गई और असंख्य दान दिया गया। दूसरे दिन, इसी तरह, सूर्य्य-भगवान् का पूजन हुआ और दान बँटा। तीसरे दिन शिव की पूजा हुई। ७५ दिन तक राज्य के सब कर्म्मचारी पिछले पाँच वर्षों का सञ्चित धन दान देने में लगे रहे। वह धन-सम्पत्ति कई सौ कोठों में भरी हुई थी। महाराज ने दान में अपने अमूल्य आभूषण, रत्नजटित हार, कुण्डल, मालायें, कण्ठाभूषण, मुकट, मौक्तिक आदि समस्त रत्नों को दे डाला।

हर्ष के समय में संस्कृत-भाषा की ख़ूब उन्नति हुई। यह राजा स्वयं भी बड़ा पण्डित और कवि था। रत्नावली नाटक तथा और कई ग्रन्थ उसके लिखे हुए कहे जाते हैं। इसकी सभा का सबसे नामी और प्रखर पण्डित बाणभट्ट था। उसने हर्ष के नाम पर अपना अद्वितीय ग्रन्थ हर्षचरित बनाया। यह पुस्तक ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े काम की है। इसमें हर्ष के प्रायः सभी अच्छे अच्छे कार्य्यों का वर्णन है और तत्कालीन भारत की दशा का भी हाल है।

हर्ष ने अपने नाम से एक संवत् भी चलाया, जो उसके राज्याभिषेक-काल, ६०६ ईसवी से, प्रारम्भ होता है। इसने भी सम्राट् अशोक का अनुकरण करते हुए, रोगियों के लिए अनेक औषधालय, यात्रियों के लिए धर्मशालायें और धर्मावलम्बियों के लिए तरह तरह के मन्दिर और मठ बनवाये। यह जीवहिंसा का बड़ा विरोधी था। इसने घोषणा करा दी थी कि जो कोई जीव-हिंसा करेगा उसका अपराध अक्षम्य समझा जायगा और उसे मृत्यु-दण्ड मिलेगा।

श्रीहर्ष सभी धर्मों को अच्छा समझता था। उसके राज्य में सभी धर्मावलम्बी सुख-शान्तिपूर्वक रहते थे। महाराज चन्द्रगुप्त मौर्य्य के समय के मेगस्थनीज़ नाम के लेखक ने लिखा है कि हिन्दुस्तान में ११८ राज्य हैं। पर ह्वेनचांग लिखता है कि मेरे समय में केवल ७० राज्य हैं। उनमें से कितने ही राज्यों में यह चीनी यात्री गया भी था। उसके समय में हिन्दुस्तान की सीमा का विस्तार इस तरह था। काबुल नदी के उत्तर काले पहाड़ के पूर्वस्थ लमघन, सिन्ध नदी के पश्चिम में गान्धार देश और नर्मदा नदी के उत्तर में जितने राज्य थे वे सब सम्राट् हर्ष के अधीन थे। कामरूप देश का राजा भी हर्ष के अधीन था। सुदूर पश्चिम में वल्लभी का राजा उसका जामातृ था।

श्रीहर्ष के समय में न्याय-प्रबन्ध भी बड़ा अच्छा था। राजद्रोही अथवा और प्रकार के अपराधी बहुत कम दिखाई देते थे। साधारण दण्ड, क़ैद की सज़ा थी। यदि पुत्र,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

माता-पिता-विषयक अपने कर्तव्यों के पालन में कमी करे तो उसके नाक, कान अथवा हाथ, पैर कटवा दिये जाते थे या वह घोर जङ्गलों में निकाल दिया जाता था। छोटे छोटे अभियोगों में जुरमाने की सज़ा ही काफ़ी समझी जाती थी। माल-विभाग का प्रबन्ध भी अच्छा था। कर थोड़ा लिया जाता था, पर नियम कड़े थे। प्रत्येक मनुष्य अपनी धन-सम्पत्ति का उपभोग निर्भय होकर कर सकता था। ज़मीन की पैदावार का छठा भाग कर के रूप में लिया जाता था। कर्मचारियों को जागीरें मिली हुई थीं। वही उनका वेतन था। बेगार लेना मना था। जो मनुष्य सरकारी काम करते थे उन्हें उसके लिए काफ़ी मज़दूरी मिलती थी। यद्यपि इस सम्राट् की सेना चतुरङ्गिनी थी तथापि वह युद्ध के रथों से काम न लेता था। अतः वे कम कर दिये गये थे। उसका भरोसा युद्ध के हाथियों और सवारों पर ही अधिक था। पैदलों के अस्त्र-शस्त्र ये थे—बर्छे, तलवार, ढाल, फरसे, बर्छों, धनुष-बाण, कमठे आदि। युद्ध के हाथियों की संख्या ६०,००० थी और सवारों की १,००,०००। सोने-चाँदी के सिक्के प्रचलित थे। सोने के सिक्के यद्यपि कम कर दिये गये थे तथापि चांदी के सिक्के टकसालों में बहुत ढलते थे।

पूर्वोक्त चीनी यात्री के लेखानुसार मगध, पश्चिमी मालवा, उत्तरी गुजरात आदि प्रदेश बड़े सभ्य थे। इस समय बौद्ध मत अवनति पर था, तथापि पञ्जाब, काश्मीर और उत्तर-पश्चिमी प्रान्तों में उसकी जड़ जमी हुई थी। गङ्गा के आस पास के प्रान्तों में हिन्दू-मत का बड़ा प्रचार था। पूर्वी बङ्गाल और वैशाली-प्रदेश में जैन-मत का ज़ोर अधिक था।

सन् ६४८ ईसवी में हर्षवर्धन स्वर्गगामी हुआ। उसकी मृत्यु के उपलक्ष्य में एक संवत् प्रचलित है।

हर्ष भारतवर्ष का अन्तिम सम्राट् था। उसके कोई लड़का न था, इसलिए उसके देहान्त के पश्चात् उसका राज्य उसके मन्त्री अर्जुन ने हस्तगत कर लिया। परन्तु अर्जुन को राज्य फला नहीं। अन्त में उसे सपरिवार क़ैदी होकर चीन जाना पड़ा।

कन्नोमल (एम० ए)

कपड़ों के कीड़े।

भिन्न भिन्न विज्ञान (Sciences) पढ़ने और उनको काम में लाने से बड़े लाभ हुए हैं। रेलवे, टेलीग्राफ़, हवाई जहाज़, जलयान, अनेक प्रकार की कलें और इञ्जन इत्यादि विज्ञान ही की कृपा से मिले हैं। इसी तरह बायालाजी (Biology) अर्थात् जानवरों और पेड़ों की विद्या पढ़ने से मनुष्य-जाति को बहुत बड़ा लाभ पहुँचा है। सैकड़ों बीमारियाँ, जिनका कारण समझ में नहीं आता था, और जिनमें बड़े बड़े डाक्टरों की बुद्धि काम न करती थी, वे, अब मालूम हुआ है, किसी न किसी कीड़े या कीटाणु (Germ) के कारण उत्पन्न होती हैं। उन कीड़ों के जीवन का हाल जानने से अब वही बीमारियाँ सुगमता से रोकी और अच्छी की जाती हैं। इस विद्या ने हमारी जो उन्नति की है वह एक छोटे से उदाहरण से आप पर विदित हो जायगी।

मध्य अमरीका, पनामा, क्यूबा और उसके पास के टापुओं में पीला ज्वर (Yellow Fever) नामक एक कठिन रोग हुआ करता था, जिसके कारण विदेशियों का वहाँ जाना और रहना असम्भव था। सन् १८८४ ईसवी में एक फ़्रानसीसी कम्पनी ने पनामा में नहर काटने का ठेका लिया और १८,००० आदमी काम पर लगाये। मगर दो ही बरस में इस बुख़ार से २,३४६ मौतें हुईं और कम्पनी को काम बन्द कर देना पड़ा। इस नहर का बन जाना आवश्यक था। इस लिए सन् १९०४ ईसवी में फिर कोशिश की गई। मगर काम आरम्भ करने के पहले करनल गारगस (Col. Gorgas) साहब इस रोग का कारण मालूम करने के लिए नियत किये गये। उन्होंने दो ही बरस में रोग को जड़ से उड़ा दिया, क्योंकि वह एक छोटे से कीड़े (Germ) की करतूत थी। रोगी के शरीर में काटने के बाद, भले चङ्गे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[१]

डिम्भ-कोश-अर्व्वुद से पीड़ित स्त्री ।

(शस्त्रक्रिया के पहले का चित्र)

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मनुष्य के शरीर में जब एक प्रकार का मच्छड़ (Stegomyia Gnat) काटता था तब वह कीड़ा उसके शरीर में चला जाता था। बात यह होती थी कि जब वह मच्छड़ किसी बीमार को काटता था तब उसके ख़ून के साथ कीड़े के अण्डे भी मच्छड़ के ख़ून में चले जाते थे। ये अण्डे मच्छड़ के शरीर में बढ़ते और बड़े होते थे, और जब मच्छड़ किसी आदमी को काटता तब वे उसके भी शरीर में पहुँच कर उसकी जान लेते थे। करनल गारगस ने मालूम किया कि ये मच्छड़ पानी के छोटे छोटे झरनों और तालाबों में अण्डे दिया करते हैं। इस लिए उन्होंने पानी की ऐसी जगहें तार से घेर दीं कि और मच्छड़ पैदा न हो सकें। जो घरों में थे उनको गन्धक इत्यादि की धूनी दे दे कर मार डाला। इस प्रकार सारे मच्छड़, और उनके साथही पीले ज्वर के कीड़े जो इन मच्छड़ों के शरीर में पलते थे, मर गये। अतएव इस रोग का वहाँ नाम भी न रहा, और अब वही कठिन काम जो पहले छोड़ देना पड़ा था सहज ही पूरा हो गया। अर्थात् इस विद्या की सहायता से पनामा की नामी नहर बन गई, जिससे व्यापार को बड़ा लाभ हुआ, और जो जहाज़ पहले अमरीका के संयुक्त राज्यों या दक्षिणी अमरीका के एक ओर से दूसरी ओर महीनों में पहुँचा करते थे वही अब कुछही दिनों में पहुँच जाते हैं।

जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि कितने और कितने प्रकार के जानवरों और पौधों से हमारा काम निकलता है तब हमें यह मालूम होता है कि हमारा जीवन तो इनके जीवन से मिला हुआ सा है। अनेक प्रकार के खाद्य, ओषधियाँ, वस्त्र-परिच्छद आदि हमें इन्हीं की बदौलत मिलते हैं। मनुष्य ने सैकड़ों प्रकार के जानवरों और पेड़-पौधों को अपने काम के लिए पाला और उगाया है। परन्तु कुछ प्राणी और पेड़-पौधे ऐसे भी हैं जो मनुष्यों और उनके काम की चीज़ों को बहुत हानि पहुँचाते हैं। अतएव हमें अपने जान-माल की रक्षा के लिए उनसे सदा चौकन्ने रहना पड़ता है।

मनुष्यों और जानवरों की पारस्परिक लड़ाई प्राचीन काल से चली आ रही है। इन प्राणधारियों में कुछ तो बड़े हैं, जैसे चूहे, जिनको हर कोई देख सकता है; और कुछ इतने छोटे हैं, जो बे-मालूम अपना काम करते रहते हैं और सूक्ष्मदर्शक (Microscope) यन्त्र से ही देख पड़ते हैं।

मनुष्य के इन शत्रुओं में कपड़े के कीड़े (Clothes Moth) की भी गणना है। यह कीड़ा स्वयं हानिकारी नहीं होता, किन्तु इसका बच्चा, केटरपिलर, (Caterpillar), ऊन के रुयें काट कर खाता और उनसे अपने घर या घेरे बनाता है। कुसियारी (केटरपिलर) का यह कीड़ा बहुत दिनों से ज्ञात है। इसको रोमवाले (Romans) टीनिया (Tinea) के नाम से जानते थे, और उनके देश के नामी लेखक प्लीनी (Pliny) ने इसका ठीक ठीक वर्णन लिखा है। अब इस जाति के सब कीड़े इसी नाम से पुकारे जाते हैं। ये तीस, चालीस प्रकार के होते हैं। किन्तु उनमें से चार ही ऐसे हैं जो ऊनी चीज़ों पर आक्रमण करते और मनुष्य को हानि पहुँचाते हैं। उनके कीटराज का नाम टीनिआ पेलिओनेला (Tinea Pellionella) है, जिसका केटरपिलर अपने चारों ओर घेरा भी बनाता है। शेष तीनों के केटरपिलर घेरा नहीं बनाते। वे पुराने परदों और क़ालीनों आदि की मोटी तहों में घुस कर छिपे रहते हैं।

हर मनुष्य इन जीवों को नहीं पहिचान सकता, क्योंकि ये छोटे होते हैं। इनका रङ्ग पीला भूरा सा होता है। पर भी बहुत छोटे होते हैं। जब कीड़ा रेंगता या चुपचाप बैठा होता है तब उसके पर शरीर से चिमट जाते हैं और कीड़ा एक नन्हा बेलन सा नज़र आता है। जब वह उड़ना चाहता है तब अपने परों को फैलाता है। किन्तु उस समय भी परों का फैलाव आध इंच से अधिक नहीं होता। ये कीड़े नरम परों,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बालों या ऊन पर अण्डे देते हैं। उनसे जो केटरपिलर निकलते हैं वही सारी हानि के कारण होते हैं। कैसे आश्चर्य्य की बात है कि इन कीड़ों के न तो जबड़ा होता है और न ये कुछ खाद्य ही पाते हैं। ये बिना खाये भी जीते रहते हैं! क्याही अच्छा होता यदि मनुष्य भी उदरदरी के झगड़े से बच जाता। हमारे ऋषि-मुनियों को हज़ारों बरस जप-तप करने पर भी यह बात प्राप्त नहीं हुई।

ये कीड़े घरों में, जाड़ों के प्रारम्भ और अन्त में, देख पड़ते हैं। इस लिए इन्हीं दिनों में ऐसी चीज़ें, जिन पर ये अण्डे देते हैं, इनकी पहुँच से बाहर रखनी चाहिए या इन कीड़ों को अण्डे देने से पहले ही मार डालना चाहिए। पर यह हिंसा हम लोगों से नहीं हो सकती। इस कारण हमको चाहिए कि ऊनी कपड़े, क़ालीन इत्यादि अच्छी तरह सूती कपड़ों में लपेट कर रक्खें, और उनके साथ कपूर या नेपथल (एक अँगरेज़ी दवा) या और कोई तीक्ष्ण गन्ध वाली चीज़, जिससे ये कीड़े घृणा करते हैं, अवश्य रक्खें। जो चीज़ें रोज़ काम में आती हैं और हिलाई डुलाई जाती हैं उन पर ये कीड़े बहुत कम अण्डे देते हैं, और जो दे भी देते हैं तो अण्डे जल्द गिर जाते हैं; बच्चे पैदा नहीं हो पाते। उन कपड़ों की चिन्ता अधिक करनी चाहिए जो सन्दूकों या दराज़ों में रक्खे रहते हैं, क्योंकि कीड़े अण्डे देने के लिए ऐसी ही जगह की खोज में रहते हैं जहाँ छेड़-छाड़ का डर नहीं होता। विलायत में अमीरों के घरों में ठण्डे कमरे (Refrigerating Chambers) होते हैं, जिनमें ये कीड़े नहीं रह सकते। वे अपनी उन चीज़ों को, जिन को कीड़ों से डर होता है, इन्हीं कमरों में रखते हैं।

छोटा केटरपिलर ही सारी हानि का मूल कारण है। वह मटमैले रङ्ग का होता है। वह बहुत मुलायम होने के कारण सहज ही में कुचल जाता है। उसके दो कड़े काले जबड़े होते हैं, जिनसे वह दाँतों का काम लेता है, और ऊन या परों के रुयें कुतरा करता है। सिर उसका लाल होता है। वह कुतरे हुए ऊन या बालों के रुओं से अपने शरीर के चारों ओर एक घर सा (Cacoon) बना लेता है। यह घर उसके साथ साथ चलता रहता है। घर के छोर पर एक छेद होता है। उससे वह अपना सिर और तीन टाँगें निकाल कर चलता-फिरता और खाता है। घर के ऊपर के रुयें उभरे रहते हैं, जिनके कारण घर कपड़े ही के सदृश मालूम होता है और जल्द पहचाना नहीं जा सकता।

ज्यों ज्यों बच्चा बड़ा होता है, उसे अपना घर बढ़ाने की आवश्यकता होती है। घर बड़ा करने के ढँग बड़े विचित्र हैं। छोरों पर तो घर का बढ़ाना सहज है, क्योंकि केटरपिलर इतना लचीला होता है कि भीतर ही भीतर अपने शरीर को मोड़ कर मुँह को एक ओर के छेद से दूसरी ओर निकाल लेता है और नये रुयें कुतर कुतर कर लम्बा कर लेता है। परन्तु घर का चौड़ा करना कठिन कार्य्य है। उसके लिए उसे बार बार भारी परिश्रम उठाना पड़ता है। कीड़ा पहले एक स्थान पर घर को लम्बा लम्बा आधी दूर तक चीर लेता है और जो जगह ख़ाली हो जाती है उसे दूसरे रुओं से भर देता है। फिर उसी चीरे के सन्मुख एक और चीरा उतना ही लम्बा बनाता है और उसको भी नये रुओं से भर देता है। इस प्रकार आधा घर चौड़ा हो जाता है आधा अभी वैसा ही रह जाता है। तब कीड़ा उसको भी, पहले चीरों की सीध में दो और चीरें बना कर, उसी प्रकार बढ़ा लेता है। तब कहीं सारा घर चौड़ा होता है।

कुछ लोग इन कीड़ों को उनके घरों समेत एक रङ्ग के ऊन या बालों से दूसरे रङ्गों पर बदलते रहते हैं। इससे उनके घर रङ्ग बिरङ्गे और सुन्दर बन जाते हैं। वे बहुत ही भले और देखने योग्य होते हैं।

श्रीचरण वर्मा, एम० एस-सी०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परिणाम ।

(१)

जीवन की ज्वाला से मेरा यह क्षुद्र हृदय-सर सूख गया ।
मैं हुआ विकल, सोचा, क्या प्रभु की होगी मुझ पर नहीं दया ?
जब सब पर करुणा-वृष्टि हुई तब मुझ पर भी लघु बूँद पड़ी ।
गिरते ही वह झट लुप्त हुई तब मुझे हुई वेदना बड़ी ॥

(२)

मैंने देखा, जग में बहता था मलिन प्रेम का कुत्सित जल ।
मैं करता क्या ? उससे ही अपने किया गात्र को कुछ शीतल ॥
कुछ दिन तक तो निर्भय होकर उसमें ही खूब विलास किया ।
जब ग्लानि हुई, कुछ खेद हुआ, तब उसे हृदय में छिपा लिया ।

(३)

हो गया शुद्ध तनु; हृदय पङ्कमय बना हुआ ही है अब तक ।
मैं सोच रहा हूँ, कमलों का होगा विकास उसमें कब तक ?

पदुमलाल पुन्नालाल बक्षी

गणित-ज्योतिःशास्त्र (ASTRONOMY)

किसी वस्तु के बाहरी रूप-रङ्ग को देख कर उसकी वास्तविक स्थिति मालूम करने का प्रयत्न करना उचित नहीं । विशेष कर ज्योतिःशास्त्र में ऐसा करने से बड़ी भूल हो सकती है । आकाश, ग्रह, नक्षत्र तथा पृथ्वी को ऊपर ही ऊपर देख कर हम उनका विशेष ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते । एक समय था, जब, लोग अपने नेत्रों ही के सहारे, इस बात पर विश्वास कर लेते थे कि पृथ्वी चिपटी और लम्बी-चौड़ी चीज़ है; उसे शेष-नाग अथवा कोई अन्य देव अपने ऊपर रक्खे हुए है; तारे इत्यादि चमकीले पदार्थ आकाशरूपी छत से लटक रहे हैं । ऐसी ऐसी कितनी ही भ्रममूलक कल्पनायें फैली हुई थीं । किन्तु आज कोई भी विचारशील मनुष्य इन बातों पर विश्वास नहीं करता । विज्ञान के सहारे, बड़े बड़े जहाज़ों के बन जाने से, हम स्वय इस बात का अनुभव कर सकते हैं कि पृथ्वी गोल है; वह आकर्षण-शक्ति से दूसरे ग्रहों की ओर खिँची हुई है और बिना किसी देव-दानव के आश्रय के अपनी धुरी पर घूमा करती है । इसी प्रकार विज्ञान ने ज्ञात कराया है कि आकाश असल में कोई पदार्थ नहीं ।

संसार के अन्य देशों की जनता की तरह यद्यपि हमारे देश की साधारण जनता इन कपोल-कल्पनाओं का शिकार है, तथापि आर्य्य-ज्योतिषियों ने भगवती गङ्गा के तट पर बैठ कर आधुनिक ज्योतिष के सब नहीं तो बहुत से सिद्धान्तों को खोज निकाला था, इसमें सन्देह नहीं । उन्हीं के आधार पर हज़ारों वर्षों से आज तक हमारे देश के ज्योतिषज्ञ प्रति-वर्ष पञ्चाङ्ग बना बना कर सूर्य और चन्द्र-ग्रहण तथा अन्य ग्रहों की ठीक ठीक चाल पहले से ही गणित करके बतला दिया करते हैं । परन्तु यह भी निस्संशय है कि देश के अधःपतन होने—अर्थात् राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक दशा के बिगड़ने—पर स्वार्थी मनुष्यों के दल ने हमारे पूर्वजों की इस चमत्कारिणी विद्या से लाभ उठाने की इच्छा से अशि-क्षित लोगों में कितने ही निर्मूल विचारों का प्रचार कर रक्खा है । इससे हमें पहले से सूर्य तथा चन्द्र-ग्रहण पड़ने की तिथि और समय तो अवश्य ज्ञात हो जाता है; किन्तु जनता को उनका फलाफल इस प्रकार समझाया जाता है जिससे वे प्रभावित या भयभीत होकर दूसरों को दानादि दें । इसी प्रकार पौराणिकों ने पृथ्वी और शेषनाग के सिर पर उसके स्थित रहने इत्यादि के सम्बन्ध में प्रायः प्रमाणहीन और कल्पनातीत कथाओं को फैला रक्खा है । इतना सब होने पर भी हमारे प्राचीन ग्रन्थों में ज्योतिःशास्त्र के वे दिव्य सिद्धान्त भरे पड़े हैं जिनके आगे योरप के आधुनिक ज्योतिः-शास्त्र के सिद्धान्त भी सिर नवाते हैं ।

हमारे भारतवर्ष से यात्रा करती हुई यह ज्योतिष-विद्या यूनान पहुँची, जहाँ से यूरुप के अन्य देशों ने सभ्यता प्राप्त की है । ईसा की उत्पत्ति के बहुत पूर्व यूनानी विद्वानों ने सिद्ध किया था कि पृथ्वी गेंद की तरह गोल है । परन्तु ईसाई-मत ने, हमारे पौराणिक मत की तरह, इस सिद्धान्त का ज़ोर से खण्डन किया; यहाँ तक कि पृथ्वी गोल बतलाने वाले कितने ही विद्वानों को ईसाई-मत के पण्डितों के कोप-यज्ञ में अपने जीवन की आहुति तक दे देनी पड़ी ।

यूनानी विद्वानों का यह भी मत था कि यह गोलाकार पृथ्वी अन्य ग्रहों के बीच स्थित है । इसके चारों ओर दूसरे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ग्रह घूमा करते हैं। परन्तु आधुनिक यूरोपीय विद्वानों का मत है कि बात ऐसी नहीं है। अर्थात् पृथ्वी नहीं, सूर्य बीच में है और सूर्य के चारों ओर पृथ्वी तथा अन्य ग्रह चक्कर लगाया करते हैं। इसके अतिरिक्त सूर्य-लोक से न्यूनाधिक दूरी पर दूसरे असंख्य नक्षत्र हैं। आज कल तो यही सिद्धान्त निश्चयात्मक माना जाता है। बुध (Mercury) और शुक्र (Venus) हमारी पृथ्वी के घेरे के भीतर घूमते हैं; शेष ग्रह बाहर।

पाँच ग्रह अर्थात् बुध (Mercury), शुक्र (Venus), मङ्गल (Mars), गुरु (Jupiter) और शनि (Saturn) बहुत पहले से ज्ञात थे। टेलिस्कोप नामक तेज़ दूरबीन के आविष्कार के बाद दो ग्रहों का पता और भी लगा। इन नवीन ग्रहों के नाम वरुण (Uranus) और नेपचून रक्खे गये। इनके अतिरिक्त, यह अनुमान किया जाता है कि, कुछ और भी छोटे छोटे ग्रह सूर्य के चारों ओर हैं, जिन्हें हम अभी आधुनिक दूरबीन से भी नहीं देख सकते।

प्रत्येक ग्रह के साथ घूमने वाले दास-स्वरूप कुछ उपग्रह (Satellites) भी हैं। वे सदैव अपने स्वामि-स्वरूप ग्रह के बहुत निकट रहा करते हैं। हमारी पृथ्वी का दास चन्द्रमा है, जो पृथ्वी के बहुत निकट, उसके चारों ओर घूमा करता है। इसी प्रकार अन्य ग्रहों के दास-ग्रह भी एक या अधिक हैं। यह देखा गया है कि जो ग्रह सूर्य से जितनी दूरी पर है उतने ही अधिक उपग्रह उस ग्रह के हैं।

सूर्य के चारों ओर घूमने वाले ग्रहों और उपग्रहों के अतिरिक्त दो प्रकार के ग्रह और नक्षत्र और भी सूर्य के पास हैं। उन्हें धूमकेतु (Comets) या दुमदार तारे और उल्का (Meteors) कहते हैं। धूमकेतु अन्य तारों की तरह ठोस नहीं। वे काँच की तरह स्वच्छ और पारदर्शी होते हैं। उल्कायें (Meteors) बहुत छोटे छोटे तारे हैं। वे पत्थर के छोटे छोटे टुकड़ों के सदृश हैं। उन्हें हम साधारणतः नहीं देख सकते। किन्तु जब सूर्य के चारों ओर घूमते घूमते वे पृथ्वी के बहुत निकट आ जाते हैं तब हम उन्हें क्षण-मात्र के लिए देख पाते हैं; सो भी तभी जब अधिक वेग से दौड़ने के कारण पृथ्वी के निकट की वायु से रगड़ खाकर वे गर्म हो जाते हैं और आग के अङ्गारे के सदृश प्रज्वलित हो उठते हैं। फिर अधिक गरमी पाने से वे राख या धुआँ होकर गिर पड़ते हैं। कभी कभी ये राख न होकर ठोस पत्थर के ही रूप में पृथ्वी पर आ गिरते हैं। इसी से साधारण जनता अनुमान करती है कि आकाश से पत्थर की वर्षा हुई। कहते हैं, मुसल्मानों के पवित्र स्थान मक्का में किसी समय इसी प्रकार का एक तारा गिरा था। लोग उसे ईश्वरी पदार्थ समझ कर आज तक पूजते हैं और उसे चूम चूम कर मोक्ष पाने के लिए हमारे देश और अन्य देशों से लाखों मुसल्मान, प्रति वर्ष, हज़ारों कोस की कठिन यात्रा करके, हाजी बनते हैं। इन पतनशील तारों को हम किसी भी स्वच्छ रात को, सैकड़ों की संख्या में, गिरते हुए देख सकते हैं।

सूर्य और सूर्य के चारों ओर घूमने वाले ग्रहों तथा ऊपर बतलाये हुए अन्य ग्रह-पिण्डों को मिला कर उन सब का समुदाय सूर्य-लोक (Solar System) कहाता है। सूर्य-लोक के समस्त ग्रह और नक्षत्र गोलाकार होते हैं। वे सूर्य के चारों ओर तो घूमते ही हैं, परन्तु उसके साथ ही साथ अपनी धुरी के चारों ओर भी, लट्टू की तरह, घूमते रहते हैं। इनमें सबसे बड़ा पिण्ड सूर्य है, उससे उतर कर ज्युपिटर (Jupiter) अर्थात् बृहस्पति। हमारी पृथ्वी बहुत छोटी है। अनुमान किया गया है कि ये ग्रह सूर्य्य के आस-पास ठीक वर्तुलाकार अर्थात् गोलाई में नहीं घूमते; बल्कि उनका प्रवास-पथ अण्डे के आकार की तरह है—अर्थात् वे अण्डाकार—मार्ग से सूर्य्य के चारों ओर घूमते हैं। भिन्न भिन्न ग्रह भिन्न भिन्न चाल से घूमते हैं।

सभी देशों के कुछ शिक्षित और अशिक्षित लोगों का अनुमान वर्तमान समय में किसी दरजे तक यह है कि सूर्य्य और चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर घूमा करते हैं और पृथ्वी स्वयं स्थिर है। परन्तु बात असल में ऐसी नहीं। अन्य ग्रहों के साथ साथ हमारी पृथ्वी भी घूमा करती है। सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र द्वारा देखा गया है कि सूर्य्य भी चौबीस घण्टे में अपनी धुरी पर घूम कर एक चक्कर लगा लेता है। इसी प्रकार अन्य ग्रहों की चाल भी देखी जा सकती है। अधिकतर ग्रह चौबीस घण्टे का एक चक्कर लगाया करते हैं। हाँ एक या दो ग्रह उससे कम समय में भी अपना चक्कर पूरा कर लेते हैं।

अपनी धुरी पर चक्कर लगाने के साथ ये ग्रह सूर्य्य के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चारों ओर भी चक्कर लगाते हैं। हमारा भूलोक ३६५¼ दिनों में एक बार सूर्य्य की परिक्रमा कर लेता है। इस एक परिक्रमा के समय को हम एक वर्ष कहते हैं। इसी प्रकार अन्य ग्रह भी इससे अधिक या थोड़े समय में परिक्रमा कर लिया करते हैं। जितनी दूरी पर सूर्य्य से जो ग्रह है उतने ही अधिक समय में वह एक परिक्रमा करता है।

ग्रहण।

पूर्वोक्त ग्रहों में से कुछ हमारी पृथ्वी के बहुत निकट हैं और कुछ दूर। चन्द्रमा पृथ्वी के सबसे निकट है। इस लिए जब वह घूमता हुआ पृथ्वी और किसी अन्य ग्रह के बीच आ जाता है तब वह अन्य ग्रह पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्यों की दृष्टि से छिप जाता है। इसी घटना को हम ग्रहण कहते हैं। जैसे—जब चन्द्रमा सूर्य्य के आगे आकर उसके प्रकाश को हमसे छिपा लेता है तब हम उसे सूर्य्य-ग्रहण कहते हैं। थोड़ी देर के बाद घूम कर जब वह वहाँ से हट जाता है तब फिर सूर्य्य की ज्योति हमारे पास तक पहुँचने लगती है और हम सूर्य्य-भगवान् को फिर देखने लगते हैं। चन्द्रमा के अतिरिक्त शुक्र (Venus) और बुध (Mercury) भी, सूर्य्य की अपेक्षा हमारी पृथ्वी के अधिक निकट होने के कारण, बीच में पड़ कर सूर्य्य-ग्रहण कर देते हैं; किन्तु यह ग्रह बहुत छोटे हैं। अतएव ये बड़े ग्रह सूर्य्य को एकदम नहीं छिपा सकते। फलतः बीच में इन ग्रहों के आ जाने से ग्रहण सदैव थोड़ा ही पड़ता है, पूरा नहीं। इनके अतिरिक्त गुरु (Jupiter) के अनेक छोटे छोटे पुछल्ले भी, समय समय पर, सूर्य्य के सामने आ जाते हैं। किन्तु वे इतने छोटे हैं कि उनके द्वारा लगे ग्रहण का कुछ भी प्रभाव हम पर नहीं होता। ऐसे ग्रहण को हम केवल दूरबीन द्वारा ही देख सकते हैं।

यदि हम किसी भी पदार्थ को लैम्प के प्रकाश के सामने रक्खें तो उस पदार्थ के दूसरी ओर उसकी छाया पड़ेगी और अँधेरा हो जायगा। इसी प्रकार सूर्य्य के प्रकाश के सामने होने से हमारी पृथ्वी के पीछे छाया पड़ती है। अतएव अँधेरा हो जाता है। सूर्य्य बहुत बड़ा है। हमारी पृथ्वी उसकी अपेक्षा बहुत छोटी है। अतएव यह छाया बहुत ही थोड़ी होती है। इस थोड़ी दूर तक व्यापक छाया में, पृथ्वी के चारों ओर घूमने वाले चन्द्रमा के अतिरिक्त, अन्य कोई ग्रह नहीं आता। जब चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ सूर्य्य के प्रकाश की इस छाया में, पृथ्वी के पीछे, आ जाता है तब चन्द्रमा अँधेरे में हो जाता है। इस कारण हम उसे नहीं देख सकते। इसी अवस्था को हम चन्द्र-ग्रहण कहते हैं; क्योंकि चन्द्रमा में स्वयं तो प्रकाश है नहीं—वह तो सूर्य्य के प्रकाश से ही प्रकाशित है। जब वह प्रकाश उसे नहीं मिलता तभी चन्द्र-ग्रहण होता है। वैसे तो चन्द्रमा एक मास में एक बार सूर्य्य के सामने—पृथ्वी की दूसरी ओर—आ जाता है (तभी पूर्णिमा होती है), किन्तु वह सूर्य्य की बिलकुल सीध में न होने के कारण उसकी छाया उसे स्पर्श नहीं करती। अतएव प्रति मास चन्द्र-ग्रहण नहीं पड़ता, जैसा कि पड़ना चाहिए। कोई छः महीने बाद एक बार उस पर यह छाया पड़ती है। इसी से हम छः मास के अनन्तर एक बार चन्द्र-ग्रहण देखते हैं। चन्द्रमा पर पूरी छाया पड़ने से पूर्ण-ग्रहण होता है। वह कोई दो घण्टे तक रहता है। अंश-ग्रहण के समय चन्द्रमा का कुछ ही भाग छाया के भीतर आता है। इससे उसके अवशिष्ट भाग को हम देख सकते हैं। चन्द्र-ग्रहण के समय यदि हम ध्यान से चन्द्रमा की ओर देखें तो हम उसे लाल अङ्गार की तरह पावेंगे। इससे सिद्ध है कि सूर्य्य की तरह चन्द्रमा स्वयं नहीं छिप जाता, बल्कि छाया में पड़ जाने, अतएव सूर्य्य का प्रकाश न पड़ने, से ही वह प्रकाशहीन हो जाता है। छाया में भी कुछ न कुछ सूर्य्य की रोशनी पड़ती ही है। इसी से चन्द्रमा लाल दिखाई देता है।

चन्द्र-ग्रहण तो पृथ्वी के समस्त भागों में एक ही समय हो सकता है; किन्तु सूर्य्य-ग्रहण कहीं पड़ता है, कहीं नहीं। बड़े सूर्य्य के आगे छोटा चन्द्रमा पृथ्वी के जिस भाग के सामने आ जाता है उसी भाग में ग्रहण लगता है, अन्य भाग में रहनेवाले लोगों से उसका कोई वास्ता नहीं। किसी स्थान पर चन्द्रमा सूर्य्य के आधे या कुछ ही भाग को छिपा लेता है, जिससे वहाँ आधा या आंशिक ही ग्रहण लगता है।

सूर्य्य का प्रकाश इतना प्रखर होता है कि हम सूर्य्य के पास की वस्तु को साधारणतः नहीं देख सकते। जब खग्रास अर्थात् पूरा सूर्य्य-ग्रहण पड़ता है, जो प्रायः एक घण्टे तक रहता है, तब हम उसके पास की चीज़ों को देख सकते हैं। ऐसे ही समय में विद्वान् ज्योतिषज्ञ अपने अपने यन्त्रों को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेकर बैठते हैं और सूर्य्य के निकटवर्ती ग्रहों और नक्षत्रों का पता लगाते हैं।

प्रत्येक वर्ष कम से कम दो सूर्य्य-ग्रहण, कहीं न कहीं, अवश्य पड़ते हैं; परन्तु चन्द्र-ग्रहण की बात ऐसी नहीं। सम्भव है वह कभी न भी लगे। यह देखा गया है कि एक वर्ष में अधिक से अधिक सात ग्रहण लग सकते हैं। इससे अधिक नहीं। इन सात ग्रहणों में या तो पाँच सूर्य्य-ग्रहण और दो चन्द्र-ग्रहण अथवा चार सूर्य्य-ग्रहण और तीन चन्द्र-ग्रहण होते हैं। इनमें से कोई कोई पूर्ण और कोई कोई अंश-ग्रहण हो सकते हैं।

धूमकेतु।

बहुत प्राचीन काल से संसार के प्रायः सभी सभ्य देशों में यह विश्वास चला आता है कि दुमदार सितारे दुर्घटना और आपदा-सूचक होते हैं। उनके प्रकट होने पर देश में अकाल, महामारी, युद्ध, राजा और अन्य प्रसिद्ध पुरुषों की मृत्यु इत्यादि घटनायें होने की सम्भावना रहती है। ग्रहण की तरह इन पुच्छल तारों के उदय से भी लोग भय करते हैं। संसार के इतिहास से पता लगता है कि इस प्रकार के डर से कितने ही साहसहीन, स्वास्थ्य-शून्य और प्रजा-पीड़क नृपति असमय ही में अपने जीवन तक से हाथ धो बैठे हैं। धूमकेतु को देख कर उन्हें पक्का विश्वास सा हो जाता था कि अब उनकी मृत्यु आ गई, जिससे वे कदापि नहीं बच सकते। पर असल बात यह है कि प्राचीन काल में संसार बहुत ही छोटे छोटे टुकड़े में बँटा हुआ था। उन पर अनेक अनाचारी राजा राज्य करते थे। वे एक दूसरे से युद्ध किया ही करते थे। इससे देश उजाड़ और दुर्भिक्ष तथा रोगों से ग्रस्त रहा करते थे। इसके सिवा इतने अधिक नरेश होने से कोई न कोई प्रत्येक वर्ष मृत्यु का कौर बना ही करते थे। इसी से लोगों को विश्वास हो गया था कि सारी आपत्तियों का कारण दुमदार सितारा ही है; क्योंकि ऐसे वर्ष प्रायः बहुत थोड़े होते हैं जब ये दृष्टिगोचर न होते हों।

दुमदार सितारों से भयभीत होने का एक कारण यह भी हो सकता है कि ये सितारे अन्य ग्रहों और नक्षत्रों से विचित्र ही होते हैं। सूर्य्य, चन्द्र इत्यादि ग्रह ठोस हैं। वे निश्चित नियमों के अनुसार चलते और दिखलाई पड़ते हैं। ज्योतिःशास्त्र के द्वारा हमें ठीक ठीक पता लगता है कि सूर्य्य की परिक्रमा अन्य ग्रह किस प्रकार करते हैं और अन्य ग्रहों की परिक्रमा उनके दास-स्वरूप पुच्छल तारे किन निश्चित नियमों के अनुसार करते हैं। इस प्रकार नियमबद्ध होने के कारण हम ठीक ठीक जान सकते हैं कि कौन ग्रह, किस समय, किस स्थान पर है और ग्रहण इत्यादि घटनायें कब होंगी। वास्तव में कोई भी ग्रह सूर्य्य से इतनी दूर कभी नहीं जाता कि हम उसे देख न सकें। ग्रहण तो उसी समय पड़ता है जब, इन ग्रहों के ठोस होने के कारण, सूर्य्य के सामने या उसकी छाया के नीचे आ जाने से हम सूर्य्य या अन्य ग्रहों को थोड़ी देर तक नहीं देख सकते।

दुमदार सितारे इन ग्रहों से कहीं भिन्न होते हैं। अन्य ग्रहों की तरह वे ठोस नहीं। वे ऐसे महीन और काँच के सदृश पारदर्शी (Transparent) होते हैं कि उनके पीछे छोटे से छोटे नक्षत्र के भी आ जाने से वह नक्षत्र छिप नहीं सकता; वह दिखलाई ही पड़ता रहता है। उनकी सूरत भी ऐसी विचित्र होती है कि सूर्य्य की परिक्रमा करते समय उन्हें हम उसी समय देख सकते हैं जब वे किसी विशेष स्थान पर आ जाते हैं, और समय नहीं। दुमदार सितारों के एक तो सिर होता है, एक सिर के अन्दर चमकीला मध्य भाग और एक दुम। किसी का सिर छोटा होता है और किसी का बड़ा। एवं किसी की दुम छोटी और किसी की बड़ी। इस प्रकार तरह तरह के दुमदार सितारे होते हैं।

ये विलक्षण तारे अनन्त दूरी से चलते चलते बड़ी तेज़ चाल से जब सूर्य्य के कुछ निकट आ जाते हैं तब हमें दिखलाई पड़ने लगते हैं। फिर परिक्रमा लगाते हुए अनन्त दूरी पर जाकर वे हमारी आँखों की ओट हो जाते हैं। दुमदार सितारा ज्यों ज्यों सूर्य्य के निकट आता जाता है त्यों त्यों उसका शरीर छोटा होता जाता है और दुम बड़ी निकलती आती है। उसकी दुम सदैव सूर्य्य के पीछे ही निकली रहती है। अतएव जब वह सूर्य्य और हमारी पृथ्वी के बीच में आ जाता है तब उसका सिर सूर्य्य की ओर और दुम हमारी ओर हो जाती है। फिर ज्यों ज्यों वह सूर्य्य से दूर होता जाता है त्यों त्यों उसकी दुम पीछे होती जाती है और सूर्य्य की ज्योति उस तक कम पहुँचने लगती है, जिससे हमें वह छोटा देख पड़ता है। यहाँ तक कि बहुत दूर हो जाने पर हम उसे बिलकुल ही नहीं देख सकते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काँच के सदृश पारदर्शी होने के कारण, सूर्य्य के सामने आ जाने पर भी, दुमदार सितारे, अन्य ग्रहों की तरह, सूर्य्य को छिपा कर सूर्य्य-ग्रहण नहीं कर सकते। उन्हें पार करके सूर्य्य की किरणें हमारे पास तक पहुँच जाती हैं; केवल कुहासा उत्पन्न हो जाने की तरह रोशनी कुछ ही धीमी पड़ जाती है। इतना होने पर, दिन के समय, सूर्य्य की रोशनी में भी ये विचित्र चमकीले सितारे दिखाई पड़ते हैं।

आकाश में जितने ग्रह और नक्षत्र दिखाई पड़ते हैं वे सब एक दूसरे की आकर्षण-शक्ति से खिँच कर, आकाश में बिना किसी वस्तु के सहारे, स्थिर रहते हैं और अपनी निश्चित तथा नियमबद्ध चाल से भ्रमण करते हैं। किसी अन्य नवीन ग्रह के निकट आ जाने से उनकी आकर्षण-शक्ति में अन्तर आ सकता है; किन्तु दुमदार सितारे इतने छोटे होते हैं कि, उनकी बेढगी चाल के कारण, आकर्षण-शक्ति में कुछ भी भेद नहीं पड़ने पाता और ग्रह पहले की तरह स्थिर रह कर अपने स्थान या लकीर से ज़रा भी नहीं हटते। दूसरी ओर यह देखने में आता है कि जब कोई दुमदार सितारा किसी बड़े ग्रह के बहुत निकट आ जाता है तब उसकी चाल और सीध में निःसंशय अन्तर पड़ जाता है।

दूरबीनों से देख कर पता लगाया गया है कि दुमदार सितारे अभिद्रवजन, ओषजन और कारबन नामक पदार्थों के बने होते हैं। उनमें कभी कभी कुछ सोडियम और लोहे का भाग भी मिश्रित होता है।

जगन्नाथ खन्ना (बी० एस्-सी०, इ० इ०)

गीता-भाष्य।

गीता हिन्दुओं का श्रद्धेय ग्रन्थ है। उस पर बहुत काल से हम लोगों की श्रद्धा चली आती है। श्रद्धा का आरम्भ बहुत करके उसी समय हुआ होगा जिस समय कि वह "गाई गई" थी—जिस समय उसके तत्त्व श्रीकृष्ण के मुख से निर्गत हुए थे। उस पर आज तक अनेक भाष्य, टीकायें और व्याख्यायें हो चुकी हैं। यह ग्रन्थ-रत्न कई प्रकार के ज्ञान का समुद्र है। इसी से भिन्न भिन्न सम्प्रदायवालों ने इसे अपने अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के अनुकूल बनाने की चेष्टा की है। गीता का आदर उसकी जन्म-भूमि भारत ही में नहीं, देश-देशान्तरों में भी है। योरप और अमेरिका के कितने ही विद्वानों ने उसकी प्रशंसा की है; उसके अनुवाद, अपनी अपनी भाषा में, किये हैं; उसकी टीका-टिप्पणियाँ भी प्रकाशित की हैं। यदि गीता में अपूर्वता न होती—यदि उसमें गाई गई ज्ञान-गाथा में विशेषता न होती—तो अन्यान्य धर्मों के अनुयायी विदेशी विद्वान् कदापि उसकी ओर इतने आकृष्ट न होते।

गीता पर हम लोगों की जो भक्ति है उसकी मात्रा कुछ समय से अधिक हो गई है। यह अधिकता दिन पर दिन और भी वृद्धि पर है। अब तो गीता गाने और उसके रहस्य समझाने के लिए सभायें तक संस्थापित हो गई हैं। भारतीय भाषाओं में उसके कितने अनुवाद और कितने भाष्य प्रकट हो चुके हैं, इसकी गिनती ही नहीं। जबसे मान्यवर तिलक का गीता-भाष्य निकला तबसे तो हम लोगों के श्रद्धा-सागर में तूफ़ान सा आगया है। तिलक का गीता-भाष्य है भी ऐसा ही। उनके भाष्य में यह विशेषता है कि उन्होंने गीता को कर्म्मयोग-शास्त्र सिद्ध कर दिया है। इसी साधन की सिद्धि—इसी उद्देश की पूर्ति—के लिए उन्होंने लेखनी उठाई थी और इसमें वे सफल-मनोरथ भी हुए हैं। पर इसका यह अर्थ नहीं कि विद्वत्ता के बल पर और विद्वान् गीता का भाष्य और तरह नहीं कर सकते। ज़रूर कर सकते हैं; और यह बात गीता के जन्म के बाद से ही होती चली आई है। इस तरह के भाष्य सभी को पसन्द आवें या न आवें, सभी ऐसे भाष्यों की युक्तियों के क़ायल हों या न हों, यह और बात है। स्वभाव, रुचि, अभ्यास, सङ्गति, सम्प्रदाय और विवेक-बुद्धि के न्यूनाधिक विकास के अनुसार सब को सब चीज़ें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक सी हृदयङ्गम नहीं होतीं। यही कारण है, जो तिलक के गीता-भाष्य की प्रतिकूलता करने वाले भी एक नहीं, अनेक विद्वान्, इस देश में ही पाये जाते हैं।

आज हम एक और गीता-भाष्य का परिचय पाठकों से कराना चाहते हैं। यह भाष्य भी मराठी-भाषा में है। इसे भाष्य क्या महा-भाष्य कहना चाहिए। इसका अभी बहुत थोड़ा अंश प्रकाशित हुआ है। पर इस थोड़े अंश से ही बड़े आकार के कोई साढ़े पाँच सौ सफ़े घिर गये हैं। पुस्तक का काग़ज़ अच्छा, टाइप छोटा, पर छपाई बहुत साफ़ सुथरी है। पुस्तक पर जिल्द नहीं। अनेक चक्रों, रेखाओं, आकृतियों और नक़शों से भाष्यकार ने अपने कथन की पुष्टि की है। मूल्य ३) रुपये है। भाष्यकार का नाम और पता यह है—

श्रीयुत शङ्कर रामचन्द्र राजवाड़े, बी० ए०
१९५, सदाशिव पेठ,
पूना।

आपही से यह पुस्तक प्राप्त हो सकती है।

इस इतनी बड़ी पुस्तक में गीता के केवल पहले और दूसरे अध्याय का भाष्य है। तीसरे अध्याय के केवल ११ श्लोकों की व्याख्या इसमें हुई है, सो भी पूरी नहीं हुई; आगे "चालू" है। इससे पाठक इस बात का अन्दाज़ा कर सकेंगे कि समग्र भाष्य, पूर्ण होने पर, कितना बड़ा होगा और कितनी जिल्दों में निकलेगा। उसमें सब मिला कर कोई ढाई हज़ार सफ़े होंगे।

इस भाष्य की रचना में भाष्यकार ने अपनी बहुज्ञता, परिश्रम और अध्ययन-शीलता का ज्वलन्त नमूना दिखा दिया है। कोई शास्त्र ऐसा न होगा, कोई विद्या ऐसी न होगी, जिसके प्रसङ्गोपात्त सिद्धान्तों का उल्लेख उन्होंने इसमें न किया हो और जिसके द्वारा उन्होंने गीता के तत्तद्विषयक विचारों की एक-वाक्यता न दिखाई हो। जीव-विज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान, विश्वरचनाशास्त्र, मनोविज्ञानशास्त्र, मनुष्य-विज्ञान-शास्त्र, देवविज्ञानशास्त्र, न्यायतत्त्व, धर्मतत्त्व, इत्यादि अनेक शास्त्रों की सहायता से भाष्यकार ने इसकी रचना की है। गीता के मूल श्लोक देकर पहले आपने उनका भावार्थ दिया है। फिर श्लोक के प्रत्येक भावांश, यहाँ तक कि किसी किसी विशेष शब्द की भी, विस्तृत व्याख्या की है। तीसरे अध्याय का ग्यारहवाँ श्लोक लीजिए। उस पर आपने पृष्ठ २९१ से जो भाष्य आरम्भ किया तो पुस्तक समाप्त हो गई, पर भाष्य समाप्त न हुआ! दूसरे अध्याय के नवें श्लोक में "गुड़ाकेश" शब्द आगया। उसके लिए आपको कोई १२ सफ़ों का एक परिशिष्ट ही अलग लगाना पड़ा। इसी तरह और भी दो एक परिशिष्ट आपको लिखने पड़े हैं। इतने ही से आपकी परितुष्टि नहीं हुई। पाद-टीकायें भी आपने बहुत लम्बी लम्बी दी हैं। प्रसङ्ग से आर्यों के मूलस्थान का उल्लेख आगया तो आपने उत्तरी ध्रुव पर बारीक टाइप में कई सफ़े की एक पाद-टीका लिख डाली और ध्रुवविषयक जानी गई सारी बातें उसमें कह दीं।

ऐसे गीता-भाष्य की समालोचना क्या, उसकी संक्षिप्त विवेचना लिखना भी, कई कारणों से, हमारे लिए असम्भव है। अतएव इस भाष्य की विशेषता का स्वल्प उल्लेख, कुछ कुछ भाष्यकार ही के शब्दों में, किया जाता है। ये शब्द हमने उन्हीं की भूमिका से लिये हैं। सुनिए—

गीता में जो कृष्णअर्जुन-संवाद है वह ब्रह्म-विद्या और योगशास्त्र के आधार पर है। व्यष्टि के भीतर और बाहर व्याप्त समष्टि ही का नाम ब्रह्म है। अतएव ब्रह्मविद्या को समष्टि-विद्या किंवा समाज-शास्त्र कहना चाहिए। इसी तरह योग का अर्थ है, मनुष्यों का आचरणीय कर्तव्य अर्थात् कर्मयोग। यही कर्म्मयोग मनुष्य का नियत कर्म्म किंवा नैतिक कर्म्म कहा जा सकता है। इस दशा में योग-शास्त्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का तात्पर्य्य हुआ नीतिशास्त्र। सारांश यह कि ब्रह्म-विद्या और योग-शास्त्र को यथाक्रम समाजशास्त्र और नीतिशास्त्र कहना चाहिए।

इसी अर्थ के अनुसार भाष्यकार ने इस ग्रन्थ में नीति और समाज की दृष्टि से गीता के तात्पर्य्य का विवेचन किया है। तिलक महोदय ने अपने गीता-रहस्य में गीता का अर्थ कर्म्म-योग-परक किया है। और राजवाड़े महाशय ने समाजशास्त्र और नीति-शास्त्र-परक। दोनों भाष्यकारों की साधन-सिद्धि में यही अन्तर है।

प्रस्तुत भाष्य के लेखक की राय है कि केवल ब्रह्मज्ञान या केवल कर्म्मयोग का आश्रय लेकर यदि गीताज्ञान का विचार किया जायगा तो वह अपूर्ण रहेगा। यहाँ तक कि उससे समाधानकारक रीति पर गीता के तत्त्वों का बोध कभी होगा ही नहीं। भाष्यकार की यह उक्ति तिलक महाशय की विचार-प्रणाली के प्रतिकूल है। इससे उनके दृष्टिकेन्द्र का खण्डन होता है। यह बात मान्य है या अमान्य, इस पर गीता-तत्त्व के ज्ञानी ही विचार कर सकते हैं; यह हमारे सङ्कुचित विचारक्षेत्र की सीमा के बाहर है।

भाष्यकार का कहना है कि उनका यह भाष्य बिलकुल ही नये ढंग का है। न यह किसी पहले भाष्य का प्रतिबिम्ब है, न रूपान्तर है, न तदनुरूप घटाया बढ़ाया हुआ भाषान्तर है। इसमें गीता के प्रत्येक श्लोक का विवरण केवल नीति और समाज की दृष्टि से किया गया है और गीता के विचारों की सङ्गति गीता के ही शब्दों से लगाई गई है। भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों की भिन्न भिन्न विचार-सरणि का पृथक्करण करके उनकी साङ्गोपाङ्ग परीक्षा की गई है। इसमें अध्यात्म-विषय का जो विवेचन है उसमें समाज, नीति, धर्म्म और राजशासन के आद्य तत्त्व अच्छी तरह प्रकट किये गये हैं। मुख्यतः महाभारत के और प्रसङ्गोपात्त वेद, ब्राह्मण, उपनिषद् आदि ग्रन्थों के प्रमाण देकर भाष्यकार ने अपनी उक्तियों की परिपोषकता की है। पाश्चात्य तत्त्वज्ञानियों के सिद्धान्तों का उल्लेख भी उन्होंने किया है। गुणदोष-मीमांसा करते समय पूर्वी और पश्चिमी, दोनों देशों के विद्वानों के विचारों की तुलना आपने की है। इस कारण इस भाष्य में अँगरेज़ी पढ़े लिखे लोगों को भी पसन्द आने योग्य सामग्री है, और दूसरे प्रकार के देशी विद्वानों को भी पसन्द आने योग्य। पुरानी संस्कृत-पद्धति से शिक्षित जनों को इस भाष्य के पाठ से यह भी मालूम हो जायगा कि पाश्चात्य विद्याओं, कलाओं और शास्त्रों की विचार-सरणि कैसी है। यह बात उन्हें ऐतिहासिक और औत्क्रान्तिक पद्धति से एक ही जगह थोड़े में मालूम हो जायगी।

अपने भाष्य के विषय में भाष्यकार ने भूमिका में जो कुछ लिखा है उसका संक्षिप्त सारांश ऊपर दिया जा चुका। इससे पाठकों को ज्ञात हो जायगा कि इसमें किस प्रकार की विचार-परम्परा से काम लिया गया है, किस उद्देश को सिद्ध करने के लिए चेष्टा की गई है और उस चेष्टा को फलीभूत करने के लिए कितना परिश्रम करना पड़ा है। यह भाष्य निःसन्देह गहन विचारों का आकर और उच्च कोटि के पाण्डित्य का प्रदर्शक है। मराठी भाषा जानने वालों को इसका अवश्य अवलोकन करना चाहिए।

यह तो इस भाष्य के गुण-ग्राम का संक्षिप्त उल्लेख है। इसमें कुछ दोष भी हैं। भाष्यकार ने इसमें इतने अधिक शास्त्रों के सिद्धान्तों पर विचार और गीता से उनका मिलान किया है कि भाष्य में कहीं कहीं जटिलता आ गई है। भाष्य इस लिए किया जाता है कि मूल पुस्तक का आशय अच्छी तरह समझ में आजाय। पर इस भाष्य को पढ़ते समय यत्र तत्र मन व्यामोह में पड़ जाता है। शङ्का होने लगती है कि क्या गीताकार ने इन सब बाहर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की बातों के—भिन्न भिन्न शास्त्रों की शाखा-प्रशाखाओं के—रहस्य का कभी स्वप्न में भी ख़याल किया होगा। तिलक महाशय ने गीता का अर्थ कर्म्मयोग पर घटित किया है। उनके विवेचन और उनकी तर्क-पद्धति से उनके इस उद्देश की सिद्धि का पता पद पद पर लगता है। जो कुछ उन्होंने लिखा है उस उद्देश को ही लक्ष्य करके लिखा है। पर प्रस्तुत भाष्य में लेखक महोदय, कहीं कहीं पर, कहाँ के कहाँ चले गये हैं। यदि इसी तरह और विद्वान् भी भिन्न भिन्न उद्देशों को लक्ष्य करके गीता का तात्पर्य्य तदनुकूल घटित करने की चेष्टा करेंगे तो गीता का प्रधान उद्देश समझना कठिन हो जायगा। साम्प्रदायिक टीकाकारों ने, अपने अपने सम्प्रदाय के सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए, अब तक गीता के जो अर्थ लगाये हैं वही बहुत बड़े विचार-विभ्राट् का कारण हो चुके हैं। इस तरह और अधिक विभ्राट् की अब ज़रूरत नहीं। इस तरह की खींच-खाँच—इस तरह की विभिन्न-लक्ष्यता—से हानि अधिक होने की सम्भावना है, लाभ कम।

इस भाष्य के विषय में हमारी एक और भी प्रार्थना है। भाष्यकार ने पश्चिमी देशों के कितने ही नामी नामी विद्वानों और तत्त्वज्ञों के विचारों की अनेक बार निन्दा की है। उन पर आक्रमण तक किये हैं। उनके विषय में ऐसी ऐसी बातें कही हैं जो विद्वानों को न कहनी चाहिए। आपने क्राइस्ट और बुद्ध तक को नहीं छोड़ा। भूलें आप दिखा सकते थे, पर नम्रतापूर्वक सौम्य-भाव से। सम्भव है, कुछ लोग कह बैठें कि जो विद्वान् दूसरों का आदर नहीं करता—जो प्रतिकूल मत रखने वालों की कठोर टीका करता है—वह गीता-भाष्य लिखने का अधिकारी नहीं। एक तिलक महोदय हैं जिन्होंने शङ्कराचार्य्य तक की भूलें दिखा दीं, पर इस युक्ति से दिखाईं कि कटुवाद की गन्ध तक न आने पाई। एक राजवाड़े महाशय हैं जिन्होंने स्पेन्सर और कान्त आदि की भूलें दिखाने की चेष्टा करने में कटुता के कटोरे ढुलका दिये! आशा है, आप हमें इस यथार्थवाद के लिए क्षमा करेंगे।

———

वह छवि।

ढूँढ़ूँ तुमको कहाँ बताते क्यों नहीं।
पाऊँ कैसे तुहें सिखाते क्यों नहीं॥ १॥
क्षणिक छटा को दिखा; फिरे छिपते कहाँ।
क्यों प्रकटित नहिँ होते, हो रहते कहाँ॥ २॥
कभी लता-सौन्दर्य्य बीच में ही मिलो।
कभी कुसुम की नई कली में ही खिलो॥ ३॥
पक्षी-गण के मधुर मनोहर गान में।
पाते तुमको कभी कभी उद्यान में॥ ४॥
युवकों के उत्साह उदार उमङ्ग में।
तथा मनोरम रूप सु-कोमल अङ्ग में॥ ५॥
नेताओं की शक्ति, भक्त की भक्ति में।
निज उपासकों में, अनुचर-अनुरक्ति में॥ ६॥
रमणी-गण की मन्द मन्द मुसकान में।
अथवा संयत योगिराज के ध्यान में॥ ७॥
जननी के वात्सल्य, पिता के प्यार में।
कभी अकारण किये गये उपकार में॥ ८॥
योद्धाओं के शौर्य्य, सन्त की शान्ति में।
किसी प्रतापी के आनन की कान्ति में॥ ९॥
सूर्य्य-चन्द्र में प्रकटित विमल विकाश है।
तुम से ही रञ्जित सारा आकाश है॥ १०॥
इस रहस्य को थोड़ा थोड़ा जान कर।
नहिँ होता सन्तोष, तुम्हें अनुमान कर॥ ११॥
जिसके दर्शन किये तोष भर पूर हो।
क्षुद्र हृदय का संशय क्षण में दूर हो॥ १२॥
वह छवि दो दिखला मिट जायें भ्रम सभी।
खुले हमारे नेत्र न फिर जलकें कभी॥ १३॥

रामचन्द्र शुक्ल, बी० ए०

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

महाराना प्रतापसिंह का ताम्रपत्र ।

महाराना प्रतापसिंह का एक पट्टा मैं सरस्वती के किसी पिछले अङ्क में छपा चुका हूँ। उनका दिया हुआ एक ताम्रपत्र भी देखने में आया है। उसकी नक़ल भी, ऐतिहासिक प्रमाणों में काम आने के वास्ते, छपाई जाती है। उसके सम्बन्ध का कुछ वृत्तान्त भी प्रकाशित किया जाता है।

मारवाड़ की दक्षिणी सीमा में गोडवाड़ नाम एक बड़ा परगना है। वह ख़ूब सजल है और आड़े-वाले पहाड़ के नीचे, मेवाड़ से मिला हुआ, है। वह पहले मेवाड़ का था। परन्तु अब कोई १५० वर्ष से जोधपुर के राज्य में मिल गया है। यह ताम्रपत्र उसी परगने के मृगेश्वर गाँव के शासन-सम्बन्ध में है। महाराना प्रतापसिंह ने, संवत् १६३९ में, उसे कान्हा नामक एक चारण को दिया था। अब तक वह उसी की सन्तान के अधिकार में है। क्योंकि जोधपुर-राज्य में गोडवाड़ के आजाने पर मारवाड़ के उदार महाराजाओं ने भी उसे उसी के पास रहने दिया। उन्होंने तो दो गाँव और भी अपनी तरफ़ से दिये। ताम्रपत्र की नक़ल नीचे दी जाती है—

महाराज धिराज मह रा-
णा श्री प्रताप स्यंघजी आदे-
सातु चारण कान्हा हे गाम-
मीरघे सर दत्त मया कीधो-
आघाट करे दीधो संवत् १६३९ वर्षे
फागण सुदी ५ दुए श्री
मुख बीदमान साह भामा साह

(अर्थ) महाराजाधिराज महाराना श्रीप्रतापसिंह जी का हुक्म है कि चारण कान्हा को मृगेश्वर गाँव इनायत किया। आघाट (शासन) करके संवत् १६३९ की फागुन सुदी ५ को श्रीमुख की आज्ञा से भामा साह की मौजूदगी में उसे दिया।

दन्तालपत्र ।

चारण लोग ताम्रपत्र का आशय याद रखने के लिए उसका भावार्थ पद्यबद्ध कर लेते हैं, जिस को दन्तालपत्र कहते हैं। इस ताम्रपत्र का दन्ताल-पत्र भी उन्होंने बना लिया है। "आरकियोलाजीकल सरवे" के अवसर पर, सन् १९०८ के दौरे में, क़सबे बाली में, मृगेश्वर के एक चारण पीरदान ने उसे मुझे लिखाया था। उसकी भी नक़ल देखिए—

छःपै

संवत सोले सुपह। बरस गुणालीस विचालें॥
सुद पंचम गुवरार। मास फागण हर खाँले॥१॥
पातल निरप ह्वै प्रसन्न। सुने रूपग काना सर॥
वाह वाह कह बचन। हरख उपजे सांगाहर॥२॥
गोढाण धरा बाली गढ़े। आछा अरहट सीम अत॥
परताप राण ताँबा पतर। दियो मृगेश्वर ग्रामदत॥३॥

(अर्थ)—अच्छे संवत् १६ और बरस ३९ में, हर्षवाले फागुन महीने की सुदी पञ्चमी गुरुवार को, राना प्रतापसिंह ने, काना का रूपक सुनने से प्रसन्न होकर, "वाह वाह" कहा और उसी साँगा के पोते प्रताप ने हर्षित होकर, गोडवाड़ परगने में, बालीगढ़ के अच्छे अरहटों (कुवों) और बहुत सी सीमा (धरती) वाला मृगेश्वर गाँव देकर ताम्रपत्र कर दिया।

इस दन्तालपत्र में ताम्रपत्र की फागुन सुदी ५ के सिवा दिन गुरुवार भी लिखा है। पर यह वार ग़लत है। कवि ने अटकल से उसे पीछे से धर दिया है। क्योंकि संवत् १६३९ के चण्डू-पञ्चाङ्ग में फागुन-सुद ५ को शनिवार लिखा है, गुरुवार नहीं।

सूचना ।

हल्दी-घाटे की लड़ाई के सातवें वर्ष १६३९ संवत् था। यह लड़ाई, संवत् १६३३ में, अकबर बादशाह की फौज से हुई थी। बादशाही सेना के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सेनापति आँबेर-राज्य के युवराज कँवर मानसिंह थे। इन बरसों में गोंघूँदा, उदयपुर और कूँभलगढ़ वग़ैरह कई शहर और क़िले महाराना से छूट चुके थे और वे पहाड़ों में रह कर अपने बाक़ी बचे हुए इलाक़े का शासन करते थे। उसमें गोडवाड़ का परगना भी था। उसी का गाँव मृगेश्वर कान्हा चारण को दिया गया था।

कान्हा।

कान्हा साँदू जाति का चारण, हूँपाखेड़ी-गाँव का रहने वाला था, जो चीतोड़ के पास है। चीतोड़ में अकबर बादशाह का अमल हो जाने से वह महाराना प्रतापसिंह की बन्दगी में रहता था। हल्दीघाटे की लड़ाई में भी वह साथ था। उस समय उसने महाराना की वीरता के बखान की जो कविता बनाई थी वह अब तक विख्यात है। उसका एक गीत नीचे लिखा जाता है—

रिम[1] हरची[2] घरण[3] पयंपे[4] राणा। है हल्दीघाटी रिण हाक[5]। चौल[6] करण रहगी चित माहीं। अँग अहवात[7] तणी[8] अभलाक[9] ॥१॥ चौरँग[10] रँग चाढे चीतोड़ा। धड़ धड़[11] चिया मुह[12] खगधार॥ दल[13] सावक[14] करवा गज[15] दंता। सुन्दर खाँत[16] रही सिण गार॥२॥ अरि-राणी इम[17] कहे ऊदवत्[18] अँग अहवात छूटगी आस॥ जला[19] बोल पातल[20] सूं जुडतां[21]। हला[22] बोल ची[23] रही हुलास॥३॥ महलाँ खड़[24] बीछड़ नह मिलिया[25] मलिया[26] तो सूं जाव[27] मही॥ अन रँगिया चूड़ा ऊतरीया। रँग बारी मन खाँत रही॥४॥

(१) वैरी (२) की (३) घरवाली (४) कहे (५) लड़ाई का कोलाहल (६) चुहल (ऐश) (७) सुहाग (८) की (९) अभिलाषा (१०) सेना और लड़ाई (११) टुकड़े टुकड़े किया (१२) सामने (१३) लेप (१४) मजीठ या कोई दूसरा रङ्ग, जो हाथी-दांत का चूड़ा रङ्गने में काम आता है (१५) हाथी-दांत का चूड़ा (१६) चाह, हौस (१७) ऐसे (१८) उदयसिंह के बेटे (१९) घमासान लड़ाई (२०) प्रतापसिंह (२१) भिड़ते हुए (२२) रति-रङ्ग (२३) घोड़ा दौड़ा कर

अर्थ।

हे राना, वैरी की घरवाली कहती है कि हल्दीघाटी में लड़ाई का कोलाहल होने से चुहल (ऐश) करने की अभिलाषा चित्त ही में और सुहाग की अङ्ग ही में रह गई (क्योंकि मेरे पति उस लड़ाई में मारे गये) ॥१॥

हे चीतौड़ा-राना प्रतापसिंह, तूने तो चतुरङ्गिनी सेना पर रङ्ग चढ़ा दिया और जो सामने आया तलवार की धार से उसके धड़ के टुकड़े टुकड़े उड़ा दिये। इधर शृङ्गार के लिए हाथी-दाँत के चूड़े पर रङ्ग चढ़ाने का अरमान ही सुन्दर (शत्रु की स्त्री) को रह गया (क्योंकि वह नई ब्याह आई थी; गौना भी न हुआ था। राजपूतों में यह दस्तूर है कि ब्याह में दुलहन को हाथी-दाँत का चूड़ा पहनाते हैं। वह उस वक्त तो सफ़ेद होता है; मुकलावे[1] में मजीठ के रङ्ग से लाल रँग दिया जाता है)॥ २॥

हे उदयसिंह के बेटे, शत्रु की स्त्रियाँ कहती हैं कि सुहाग की आस अङ्ग से छूट गई। प्रतापसिंह के साथ घमासान संग्राम में भिड़ने से रति-रङ्ग का हुलास दिल ही में रह गया॥ ३॥

जब वे महल से घोड़ा दौड़ाते हुए, बिछुड़ कर, तुझसे खेत में जा कर मिले (वहीं खेत रहे) तब बिना रँगे हुए चूड़े उतरे। रँगने की चाह मन की मन ही में रह गई (क्योंकि गौना होने के पहले ही विधवा हो गई और विधवा को चूड़ा उतार देना पड़ता है)॥४॥

कवि ने इस गीत में अपनी अनोखी युक्ति और

(२४) नहीं मिला (२५) मिल कर (२६) खेत (२७) बिना रँगे हुए।

(१) गौने।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[२]

डिम्भ-कोश-अर्व्वुद से पीड़ित स्त्री।

(शस्त्रक्रिया के दस दिन बाद का चित्र)

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उक्ति से वीर और शृङ्गार दोनों रसों का वर्णन किया है। पर वीररस को चमकाया और शृङ्गार को दबाया है। इस गीत के सम्बन्ध में यह शङ्का हो सकती है कि महाराना प्रतापसिंह के शत्रु तो मुसलमान थे, फिर राजपूतनियों के चूड़े क्यों उतरे? इसका यही समाधान हो सकता है कि उस समय मुसलमानी फ़ौज में राजपूत भी थे। अतएव ऐसे नौ-जवान राजपूत भी काम आये होंगे जिनका गौना न हुआ होगा। इससे राजपूतनियों के बिना रँगे हुए चूड़े उतरने, अर्थात् विवाह के बाद ही विधवा होने, का वर्णन राजपूती ढँग से किया गया है।

भामासाह।

उक्त ताम्रपत्र के तैयार होने के वक्त भामासाह मौजूद था। टाड के राजस्थान में वह महाराना प्रतापसिंह का पुश्तैनी दीवान लिखा हुआ है। "आरकियोलाजीकल सरवे" के एक दौरे में, क़सबे सादड़ी, परगना गोडवाड़ के बाहर, भामासाह के भाई ताराचन्द काबड़िये की बनवाई हुई एक बारादरी और बावड़ी हमको मिली। उसके पास ही ताराचन्द, उसकी चार औरतों, एक खवास, छः गायनों, एक गवैया और उस गवैये की औरत की मूर्तें पत्थरों पर खुदी दिखाई दीं। ताराचन्द गोड़वाड़ का हाकिम था। वह बड़े अमीराना ठाठ से सादड़ी में रहता था। उसने कीतू नाम की एक खवास घर में डाल ली थी। वह बहुत सुन्दर थी। महाराना प्रतापसिंह के बेटे अमरसिंह ने उसकी सुन्दरता का वर्णन सुन कर उसे माँगा, तो ताराचन्द ने न दिया। इस पर महाराना ने उसे उदयपुर में बुला कर मरवा डाला। नेनूराम सेवक उसका गवैया था। वह उसकी पगड़ी ले कर सादड़ी में आया। पगड़ी के साथ उसकी चारों औरतें, खवास कीतू, छः गायनें, गवैया नेनूराम और उसकी औरत, ताराचन्द की एक फूफी, उसका पति और एक मुसलमान पोलिया[1] कुल २० आदमी चिता बना कर जल मरे। इक्कीसवीं एक घोड़ी भी थी।

इस सतीवाड़े का वृत्तान्त कहते समय सेवक जेठमल ने ताराचन्द के घराने का कुछ इतिहास भी कहा, जिसमें भामासाह का हाल भी आ गया। सारांश उसका यह है—

भामासाह का परदादा चाँडा काबड़िया, जो रायकोठारी गोत का ओसवाल, दिल्ली का रहने वाला था, उसके बाप-दादे बादशाह की ख़फ़गी के कारण लड़ाइयों में मारे गये थे। उस वक्त वह बच्चा ही था। इस लिए उसको काबड़[2] में डाल कर मेवाड़ लाये। इससे उसकी और उसकी सन्तान का नाम काबड़िया हो गया।

चाँडा का बेटा टीड़ा और टीड़ा का भारमल हुआ। ये लोग बादशाहों के यहाँ कोठारी और कामदार थे और उदयपुर में दीवान हो गये थे। दीवान होने के पहले भी इनके पास धन बहुत था। इसीसे ये साह कहलाते थे। जिन दिनों महाराना प्रतापसिंह विखे (संकट) में थे, भारमल का बेटा भामासाह कहीं तीर्थयात्रा को जा रहा था। रास्ते में रथ का पहिया टूट गया तो खाती को बुलाया। रात का वक्त था। पाँच रुपये तक देने कहे। तो भी खाती न आया। तब किसी ने कहा कि खाती यों नहीं आवेगा। गाँव के हवालदार से कहलाओ। भामासाह ने वही ५) हवालदार के पास भेज दिये। हवालदार के आदमी गये और खाती को धक्के देते हुए ले आये। भामासाह का रथ झट पट सुधर गया। तब उसने अपने दिल में कहा कि हुकूमत बड़ी चीज़ है; दौलत कुछ काम नहीं आती। एक हवालदार का गाँव में कितना हुक्म चलता है। दीवान का तो न मालूम

१ पोलिये के ढेर पर मसजिद बनी है। इस समय उसकी औलाद में दाऊदख़ाँ पड़िहार मौजूद है।

२ भेंगी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कितना चलता होगा। अब ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे राज का काम हाथ आवे।

तीर्थयात्रा से लौटते ही उसने अपना सारा धन महाराना प्रतापसिंह के अर्पण कर दिया, जिससे उनके पर-पुरजे ठीक हो गये और उन्होंने बादशाही फ़ौज से लड़ कर अपना इलाक़ा छीन लिया। भामाशाह को, इस बन्दगी की रीझ में, उन्होंने दीवान बनाया। उसने बहुत सा रुपया कमा कर कई काम बड़ी नामवरी के किये। परन्तु यहाँ उनके वर्णन की आवश्यकता नहीं। यह बात सच है तो संवत् १६३९ के पहले हुई होगी।

देवीप्रसाद

खिलौने।

हिन्दुस्तान में जितने मेले और तमाशे होते हैं सब में एक ख़ास बात अवश्य होती है। वह है खिलौनों की दुकानें। मेलों के अतिरिक्त खिलौनों की दुकानें बहुत कम दिखाई देती हैं। भारतवर्ष में धार्मिक मेले अधिकता से होते हैं। प्रत्येक गाँव या आस-पास के दो चार गाँवों में से एक आध गाँव में कोई न कोई वार्षिक मेला अवश्य होता है। क़सबों में मेले अधिक होते हैं और शहरों में तो मेलों की भरमार ही रहती है। जो शहर किसी राज्य की राजधानी रहे हैं उनमें धार्मिक मेलों के सिवा कई अन्य मेले भी होते हैं, जैसे पतङ्ग उड़ाने का मेला आदि। मुसलमान भी अपने पीर-पैग़म्बरों की यादगार में कुछ मेले करते हैं। मेलों में हिन्दू और मुसलमान परस्पर बड़ी स्वतन्त्रता के साथ मिलते-जुलते हैं। उनमें सब प्रकार के लोग सम्मिलित होते हैं। जो काम अब प्रदर्शिनियों से लिया जाता है वही काम, किसी समय, इन मेलों से होता था।

मेलों में जाने के उद्देश भिन्न भिन्न होते हैं। बच्चों के लिए विशेष आकर्षण की चीज़ खिलौने होते हैं। उनमें से अधिकतर मिट्टी के होते हैं। लकड़ी, लोहे, पीतल और अन्य धातुओं के भी कुछ होते हैं। पत्थर और कपड़े के खिलौने भी दिखाई देते हैं। साधारणतः वे जानवरों और व्यवहार की चीज़ों के होते हैं। धार्मिक मेलों में देवी-देवताओं की मूर्तिओं की प्रधानता रहती है। अधिकांश खिलौने तो महा भद्दे होते हैं, पर कोई कोई उत्तम दरजे की कारीगरी के नमूने होते हैं। उनका मूल्य माल की लागत और बनाने में समय और परिश्रम के ख़र्च के अनुसार होता है। वस्तु की सुन्दरता से भी मूल्य बढ़ जाता है।

खिलौने बनाने का पेशा साधारण लोग करते हैं। और तरह से जो आमदनी उन्हें होती है उसकी कमी को पूर्ण करने के लिए वे इस व्यवसाय को करते हैं। यह घरेलू कारीगरी है। इसमें जो शारीरिक परिश्रम पड़ता है वह बहुधा मज़दूरों के द्वारा कराया जाता है। कभी कभी तो खिलौने बनाने में मशीनें भी काम में लाई जाती हैं। खिलौनों की अच्छाई और बुराई उनके बनने के स्थान के अनुसार होती है। जो खिलौने क़सबों के बने हुए होते हैं वे गाँव के बने हुए खिलौने से अधिक अच्छे होते हैं। शहर के खिलौने क़सबों के खिलौनों से भी बढ़िया होते हैं। कुछ स्थान ऐसे हैं जो विशेष प्रकार के खिलौनों के लिए प्रसिद्ध हैं। जयपुर में पत्थर के खिलौने बनते हैं और बनारस में पीतल के। विशेष विशेष स्थानों में जो खिलौने बनते हैं उन्हें विदेशी लोग भी ख़रीदते हैं और अपने देशों को ले जाते हैं। परन्तु हिन्दुस्तानी खिलौनों को विदेश भेजने का कोई नियमित व्यवसाय नहीं है। घर के अन्दर खेले जाने वाले कुछ ख़ास खेलों के अतिरिक्त हिन्दुस्तानी खेलों में, बनी हुई या बहुमूल्य चीज़ों की आवश्यकता नहीं होती। कुछ चीज़ें, जो घर के अन्दर खेले जाने वाले खेलों में काम आती हैं, बहुत सुन्दर और बहुत बढ़िया बनती थीं। उदाहरणार्थ प्राचीन और प्रसिद्ध नगर उज्जैन में अब भी, एक हीनावस्था को प्राप्त वंश में, शतरञ्ज के कुछ मुहरे हैं, जो देखने में बड़े ही मनोहर हैं और जिनके बनाने में दाम भी बहुत ख़र्च हुए होंगे।

भारतवर्ष के पश्चिमी किनारे के नगरों में गञ्जीफ़ा खेलने के ताश, जो गिनती में १२० होते हैं, अब भी एक रुपये से लेकर २० रुपये तक के तैयार होते हैं।

विदेशी खिलौनों का आना, पहले पहल, वहाँ की कारीगरी के नमूनों के तौर पर आरम्भ हुआ था। उन्हें अमीर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लोग ख़रीदते और दूसरों को दिखलाने के लिए अपने घरों में रखते थे। पाश्चात्य देशों में बने हुए खिलौने आने के पहले भारतवर्ष में चीन के बने हुए खिलौने आते थे। धीरे धीरे उनकी जगह मशीन से बने हुए पाश्चात्य देशों के खिलौनों ने ले ली। शायद इँगलिस्तान के बने हुए खिलौने यहाँ सब से पहले आये थे।

अठारहवीं शताब्दी के पिछले भाग के पेशवाओं के दरबारी काग़ज़-पत्रों में इस बात का ज़िक्र है कि अँगरेज़ी एलची ने युवा पेशवा और उसके दरबारियों को खिलौने भेंट किये। उन्हें देख कर उन लोगों को इस प्रकार की चीज़ों का शौक़ लगा। यह भी मालूम होता है कि देशी कारीगरों ने भी उन खिलौनों की नक़ल करने का उद्योग किया। कहा जाता है कि एक बढ़ई ने एक पहिये की गाड़ी बना कर दिखलाई। विदेशों में बने हुए खिलौने पहले राजधानियों और बन्दरगाहों में मिल सकते थे। वहाँ उन्हें विदेशी और धनाढ्य देशी लोग ख़रीदते थे। योरोपियन अफ़सर और अमीर हिन्दुस्तानी उन्हें मुफ़स्सिल में भी ले जाने लगे। किन्तु जब से जर्मनी और अमेरिका के सस्ते खिलौने आने लगे हैं तब से वे क़सबों में क्या, गाँवों में भी प्रवेश कर गये हैं। जापान ने भी अपने खिलौने भेजना आरम्भ कर दिया है।

जर्मनी खिलौने बनाने में पश्चिमी देशों में सबसे आगे बढ़ा हुआ है। हिन्दुस्तान ही की तरह वहाँ और जापान में भी खिलौने बनाना एक घरेलू कारीगरी (Cottage Industry) है। जर्मनी में प्रत्येक वर्ष साढ़े सात करोड़ से ऊपर रुपयों के खिलौने बनते हैं। अमेरिका के संयुक्त-राज्यों में जिस प्रकार अन्य कारीगरियों का प्रबन्ध है उसी प्रकार खिलौने बनाने की भी व्यवस्था है। वहाँ कोई सवा दो करोड़ रुपयों के खिलौने प्रति वर्ष बनते हैं। इन देशों में दूसरी कारीगरियों की रद्दी चीज़ें (By-Products) खिलौने बनाने में इस्तेमाल की जाती हैं।

मैदान में खेले जाने वाले भिन्न भिन्न प्रकार के विदेशी खेलों का आरम्भ होते ही उन चीज़ों की भी माँग पैदा हो गई जिनकी आवश्यकता उन खेलों में पड़ती थी। अनेक नये खेलों में, बनी हुई और क़ीमती चीज़ों की आवश्यकता होती है। स्कूलों तथा कालेजों में विदेशी खेलों को जगह मिलने और अमीरों के द्वारा उनके अपनाये जाने के कारण, उन चीज़ों की माँग दिनों दिन बढ़ती जाती है, जिनकी आवश्यकता ऐसे खेलों में होती है। केवल पञ्जाब में उनके बनाने के लिए कुछ कारख़ाने खुले हैं। इन कारख़ानों में जो चीज़ें बनती हैं उन्हें नुकताचीनों ने भी पसन्द किया है। किन्तु वर्तमान दुकानों से उन चीज़ों की माँग पूरी नहीं होती।

यद्यपि सारे हिन्दुस्तान में खिलौने बनते हैं और यद्यपि पञ्जाब के कुछ कारख़ाने मैदानी खेलों की कुछ चीज़ें बना कर उनका अच्छा व्यापार करते हैं तो भी विदेशी खिलौनों और खेल की चीज़ों की आमदनी भारतवर्ष में प्रति वर्ष बढ़ती जाती है। १९११–१२ ईसवी में ३४ लाख रुपये के खिलौने विदेशों से भारतवर्ष में आये थे। उसके पहले वर्ष केवल ३१ ही लाख रुपये के आये थे। उसके पहले इन खिलौनों की आमदनी ३० लाख से भी कम थी।

अन्य चीज़ों की आमदनी का मुक़ाबला जब हम ३४ लाख रुपये के खिलौनों की आमदनी से करते हैं तब यह रक़म बहुत थोड़ी मालूम होती है। परन्तु इसी तरह की बहुत सी छोटी छोटी माँगों की पूर्ति करने से हिन्दुस्तान में विदेशी माल का आना बहुत कुछ रुक जायगा और वही धन भारतवर्ष में रह जायगा। पञ्जाब के कारख़ानों के उदाहरण से यह भली भाँति प्रमाणित होता है कि विदेशी खेलों के लिए विदेशी माल के टक्कर की चीज़ें हिन्दुस्तान में बन सकती हैं। अच्छा तो वह कौन सी बात है जो हमें अन्य प्रान्तों में पञ्जाब की तरह के कारख़ाने खोलने से रोकती है। यदि कुछ रुकावटें हों तो उनकी खोज करके उन्हें दूर करना चाहिए। इस काम के लिए कच्चा माल हमें उत्तर में हिमालय से और दक्षिण में नीलगिरि-पर्वतों से मनमाना मिल सकता है। बस, इस समय आवश्यकता है मुस्तैदी और विशेष ध्यान की। इससे इतना ही न होगा कि हम खेल की चीज़ों की बढ़ती हुई माँग को पूरा कर सकेंगे, बल्कि इस प्रकार के बने हुए माल को विदेशों में भी भेज सकेंगे। यदि हम अपना माल पश्चिमी देशों को न भेज सकें, तो कम से कम एशिया और अफ़रीक़ा के कुछ देशों में अवश्य भेज सकेंगे, जहाँ पश्चिमी सभ्यता के साथ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

साथ पश्चिमी खेलों का प्रचार अवश्य होगा, जैसा कि भारतवर्ष में हुआ है।

खिलौनों के लिए भारतवर्ष में बड़ा विस्तीर्ण क्षेत्र है। यहाँ पर इतने प्रकार के खिलौने तैयार होते हैं कि वे उन्नति की भिन्न भिन्न अवस्थाओं को प्राप्त हुए लोगों की रुचि के अनुसार हो सकते हैं। एक तरफ़ तो गाँव के भद्दे खिलौने बनते हैं, दूसरी तरफ़ आगरे के सङ्गमरमर के खिलौने और दिल्ली के हाथीदाँत के सुन्दर काम। इन दोनों के सिरों में से हमें बीच के मार्ग का स्वीकार करना चाहिए। रद्दी चीज़ों को काम में लाने का विचार यहाँ मौजूद है। क्योंकि दर्ज़ियों की कतरन कपड़े की गुड़िया बनाने के काम में लाई जाती है।

खिलौनों के व्यवसाय की हीनता के मुख्य कारणों में से एक कारण यह भी है कि इस व्यवसाय का ठीक ठीक सङ्गठन नहीं किया गया। इस काम में कामयाबी के दो उपाय हो सकते हैं। एक तो यह कि ख़राब से ख़राब चीज़ें भी अधिक साफ़ सुथरी बनाई जायँ। दूसरा यह कि उमदा चीज़ों की ओर लोगों का ध्यान खींचा जाय। जापानी लोग रद्दी चीज़ों को अच्छे से अच्छे काम में लगाना जानते हैं। जर्मन लोग रेलों, मोटरगाड़ियों और अन्यान्य ऐसी चीज़ों का बनाना सबसे अच्छी तरह जानते हैं जिन्हें देख कर केवल बच्चे ही नहीं उछल पड़ते; किन्तु जिन्हें साधारण लोग भी बहुत पसन्द करते हैं।

इस समय जापान और जर्मनी के खिलौनों की एक प्रदर्शिनी होनी चाहिए। उसमें वे औज़ार भी रक्खे जायँ जो उन खिलौनों के बनाने में काम आते हैं। यदि उनके बनाने का तरीक़ा भी दिखाया जाय तो बहुत ही अच्छा हो। इस काम में बहुत रुपया न ख़र्च होगा। परन्तु इससे नर-नारी एक नया और लाभदायक व्यवसाय सीख जायँगे। जब तक देशी खिलौनों के रूप-रङ्ग आदि की उन्नति न होगी तब तक लोग विदेशी चित्ताकर्षक खिलौने अवश्य ख़रीदेंगे।

हमें चाहिए कि हम अपने देश में विदेशी खिलौनों की आमदनी को रोकें और यहाँ से अन्य देशों को खिलौने भेजने का प्रयत्न करें। इस विषय को हमें केवल व्यापारिक दृष्टि से ही न देखना चाहिए। इससे हमारे बच्चों और युवाओं में आत्म-सम्मान की वृद्धि भी होगी। जब वे यह देखेंगे कि जिन चीज़ों का वे व्यवहार करते हैं वे उन्हीं के देश की बनी हुई हैं तब उनके हृदय में आत्मगौरव का बीज अवश्य ही उगेगा। इस काम में जो अन्य देशवाले हम से बाज़ी मार ले गये हैं वह केवल हमारी ला-परवाही के कारण। इस समय उद्योग-धन्धों की दौड़-धूप में भारत-वर्ष छोटी छोटी चीज़ों को भी नहीं छोड़ सकता, क्योंकि इनमें सफलता प्राप्त करना आसान है। इन छोटे छोटे कामों से रुपया कमा कर वह अन्य देशों की बराबरी करने लगेगा और अन्य व्यवसायों में भी उनका मुक़ाबला करेगा। क्योंकि इन्हीं व्यवसायों में उन्नति करने के कारण वे इतने शक्ति-शाली हुए हैं और दूसरों के व्यापार पर आक्रमण करने की योग्यता उन्होंने प्राप्त की है।*

नारायणप्रसाद अरोड़ा, बी० ए०

विविध विषय

१—कालिदास की भूल।

भारतवर्ष नामक बँगला-मासिक-पत्र की आषाढ़ संवत् १९७४ की संख्या में अध्यापक श्रीहरिपद शास्त्री, एम० ए०, का एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें उन्होंने कालिदास की एक भूल दिखाई है। यह भूल, यदि भूल मानी जा सकती हो तो, आज तक और किसी के ध्यान में नहीं आई। कालिदास-कृत शकुन्तला-नाटक का पहला श्लोक यह है—

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वभूतप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥

इसमें कालिदास ने ईश्वर की आठ मूर्तियों का उल्लेख किया है। वे मूर्त्तियाँ हैं—जल, अग्नि, यजमान, सूर्य्य, चन्द्र, आकाश, भूमि और वायु। इनमें से पहली मूर्त्ति

---

* सरदार माधवराव किबे, एम० ए० के एक अँगरेज़ी-लेख के आधार पर।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जल को कवि ने स्रष्टा की आदि सृष्टि माना है। पर वह आदि नहीं। उसे आदि बताना ही कालिदास की भूल है। जल को आदि सृष्टि मानना श्रुति-स्मृति के विरुद्ध है। कालिदास के काव्यों का प्रचार अधिक है, श्रुति-स्मृतियों का कम। इस कारण कालिदास के "आद्या" पद ने बड़ा ग़ज़ब ढाहा है। पाठशालाओं के छात्रों तक के हृदय में उसने भ्रम उत्पन्न कर दिया है। शकुन्तला-नाटक पढ़ पढ़ कर वे लोग जल को ही आदि-सृष्टि समझने लगे हैं। पर कालिदास की उक्ति ठीक नहीं। वेदान्त के अनुसार पहले आत्मा का आविर्भाव हुआ, फिर उससे आकाश का, आकाश से वायु का, वायु से अग्नि का, अग्नि से जल का और जल से भूमि का। तैत्तिरीयोपनिषद् में लिखा है—

आत्मनः आकाशः। आकाशात् वायुः।
वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथ्वी।

सांख्य-दर्शन के अनुसार भी सूक्ष्म से स्थूल और स्थूल से स्थूलतम सृष्टि हुई है। यह नहीं कि जल ही पहले पैदा हो गया हो। मनुस्मृति के पहले अध्याय के श्लोक ७५, ७६, ७७ और ७८ में भी आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी की उत्पत्ति क्रम क्रम से वर्णन की गई है। अतएव जल को आदि-सृष्टि मानना सर्वथा असङ्गत है। अच्छा, तो यह भूल हुई किस तरह? इसका कारण मनुस्मृति ही का एक श्लोक है—

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्॥ ८॥

यह श्लोक भी मनुस्मृति के पहले अध्याय का है। इसका आशय यह है कि प्रजा की सृष्टि करने की इच्छा से भगवान् स्वयम्भू ने पहले पहल जल की रचना करके उसी में अपना बीज डाला। परन्तु इस श्लोक का "आदौ" पद आदित्व-बोधक नहीं। वैसा होने से श्रुति-स्मृति के वचनों से विरोध होगा। यहाँ तक कि स्वयं मनुस्मृति के प्रथमाध्याय के श्लोक ७५-७८ में कहे गये क्रम का भी खण्डन हो जायगा। यहाँ "आदौ" का अर्थ—"समस्त सृष्ट वस्तुओं के पूर्व"—नहीं। छठे श्लोक में मनु ने "महाभूतादि" की उत्पत्ति कही। सातवें में "सर्वभूतमय" अव्यक्त परमात्मा का आविर्भाव, अर्थात् अव्यक्त से व्यक्त होना, बताया। तदनन्तर आठवें श्लोक में यह कहा कि जल की सृष्टि पहले करके उसी में उसने अपना बीजवपन किया। जब महाभूतादि की सृष्टि वह पहले ही कर चुका था और जब उनकी सृष्टि करके वह व्यक्त भी हो चुका था तब आदि में जल की सृष्टि कैसी! मनुस्मृति के टीकाकार कुल्लूक भट्ट ने इसका उत्तर दिया है। उन्होंने पूर्वोक्त श्लोक का आशय समझाते हुए स्पष्ट लिखा है कि—

आदौ स्वकार्य्यभूमित्रह्माण्डसृष्टेः प्राक् अपां सृष्टिश्च।
इयं महदहङ्कारतन्मात्रक्रमेण बोद्धव्या।

मतलब यह कि जिन सब वस्तुओं की सृष्टि के पहले जल की सृष्टि हुई थी,—जिनकी सृष्टि जल की सृष्टि के पीछे हुई थी—"आदौ" पद से उन्हीं के आदि या पूर्व का बोध होता है। शकुन्तला-नाटक के अनेक टीकाकारों ने भी इस बात का विचार नहीं किया। मनुस्मृति के पहले अध्याय के आठवें श्लोक का अर्थ उनकी भी समझ में नहीं आया। जिस श्लोक का आशय समझने में बड़े बड़े टीकाकारों ने भूल की उसी का भाव समझने में कालिदास से भी, जान पड़ता है, भूल हो गई है।

कालिदास के भ्रमनिदर्शन की जो आलोचना हरिपद शास्त्री ने की है उसका यही आशय है। आलोचनान्त में आपने एक श्लोक उद्धृत किया है, यथा—

काव्ये भव्यतमेऽपि विज्ञनिवहैरास्वाद्यमाने मुहु-
र्दोषान्वेषणमेव मत्सरजुषां नैसर्गिको दुर्नयः।
कासारेऽपि विकासिपङ्कजचये खेलन्मराले पुनः
क्रौञ्चश्चञ्चुपुटेन कुञ्चितवपुः शम्बूकमन्विष्यति॥

और लिखा है कि लीजिए, मैं पाठकों को यह शम्बूक उपहार देता हूँ!

मनुस्मृति के पहले अध्याय के, ऊपर दिये गये, आठवें श्लोक के "आदौ" पद का अन्वय यदि तीसरे चरण के अवशिष्ट शब्दों के साथ न करके, चतुर्थ चरण के शब्दों के साथ किया जाय तो यह अर्थ निकले—

व्यक्त हुए स्वयम्भू ने जल की सृष्टि की; फिर उसी में पहले पहल (आदौ) उसने अपना बीज डाला।

इससे मनुस्मृति के सृष्टि-क्रम-वर्णन के विरोधाभास का भी परिहार हो जाता है और कुल्लूक भट्ट की तरह अर्थ की खींच खींच भी नहीं करनी पड़ती। पर शायद वैयाकरण ऐसा करने की आज्ञा न दें।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२—अमेरिका के संयुक्त-राज्यों की गुणग्राहकता।

विलास की सामग्री मोल लेने, दुर्व्यसनों में ख़र्च करने, बड़े बड़े चन्दे देने और दावतों का ठाठ ठानने में चाहे लाखों उड़ जायँ, पर अपने निर्धन देश-भाइयों को विद्यादान का सुभीता कर देने के लिए भारतीय धनिकों के हृदय में दया का प्रायः बहुत ही कम सञ्चार होता है। रही गवर्नमेंट, सो वह तो बेचारी रुपये-पैसे से सदा ही तङ्ग रहती है। वह कहाँ तक ख़र्च करे और किस किस को वज़ीफ़े दे। फिर भी वह यथाशक्ति ख़र्च करती ही है और थोड़ी-बहुत छात्रवृत्तियाँ भी देती है। इसके लिए वह धन्यवाद की पात्र नहीं, क्योंकि यह तो उसका कर्तव्य ही ठहरा। हाँ, यदि कोई गवर्नमेंट किसी अन्य देशवासी के लिए विद्याध्ययन का सुभीता कर दे तो वह अवश्य धन्यवाद की पात्र है। अमेरिका के संयुक्त-राज्यों ने एक इसी तरह का औदार्यदर्शक काम किया है। श्रीयुत रसिकलाल दत्त बङ्गाल के वासी हैं। विज्ञानाचार्य्य प्रफुल्लचन्द्र राय से आपने रसायन-विद्या सीखी। फिर उन्होंने कलकत्ता-विश्वविद्यालय से डी० एस-सी० की पदवी प्राप्त की। अच्छे रसायन-शास्त्री होकर आपने रासायनिक गवेषणा आरम्भ की और इस शास्त्र से सम्बन्ध रखनेवाली कई नई नई बातें खोज निकालीं। आपके आविष्कारों का हाल जब अमेरिका पहुँचा तब वहाँ के रसायन-शास्त्रियों ने आप की बड़ी प्रशंसा की। फल यह हुआ कि दत्त महाशय की योग्यता पर मुग्ध हो कर उस देश की गवर्नमेंट ने उन्हें, उनके काम में सहायता पहुँचाने और उन्हें उत्साहित करने के लिए, कोई ३६ हज़ार रुपये की छात्रवृत्ति देना मञ्ज़ूर किया। अब दत्त महाशय इस साहाय्य-दान से उत्साहित हो कर और भी मनोनिवेशपूर्वक रसायनसम्बन्धिनी गवेषणा में लग जायँगे। आशा है, इस काम में वे पहले की भी अपेक्षा अधिक कृत-कार्य्य होंगे। क्योंकि पेट-पूजा की चिन्ता दूर हो जाने से बुद्धि और भी विमल हो जाती है। अमेरिका के संयुक्त-राज्यों की इस गुण-ग्राहकता की जितनी प्रशंसा की जाय कम है।

३—भारतवर्ष की साम्पत्तिक दशा।

भारत बड़ा ग़रीब देश है। ग़रीब क्या, उसे तो कङ्गाल कहना चाहिए। इँगलेंड (ग्रेट-ब्रिटन) के पास यदि २०) रुपये मान लिये जायँ तो कङ्गाल भारत के पास मुश्किल से कहीं १) रुपया निकलेगा! संसार में अमेरिका के संयुक्त-राज्य सबसे अधिक सम्पत्तिशाली हैं। देखिए, अमेरिका और ग्रेट-ब्रिटन के मुक़ाबिले में भारत का क्या हाल है। इन तीनों देशों की वार्षिक आमदनी इस प्रकार है—

	रुपया
(१) अमेरिका के संयुक्त-राज्य	१,५०,००,००,००,०००
(२) ग्रेट-ब्रिटन	२८,००,००,००,०००
(३) भारतवर्ष	७,३२,००,००,०००

संयुक्त-राज्य (अमेरिका) की वार्षिक आमदनी डेढ़ खरब और ग्रेट-ब्रिटन की अट्ठाइस अरब है। पर भारत की केवल सवा सात अरब से कुछ अधिक है। गवर्नमेंट का अनुमान है कि यहाँ की आमदनी का औसत फ़ी आदमी ३०) रुपया महीना है। इसी परते से सारे देश की आमदनी सवा सात अरब रुपया कूती गई है। अर्थात् जितनी आमदनी भारत की है, उससे चौगुनी ग्रेट-ब्रिटन की है और बीस गुनी अमेरिका की। भारत की अपेक्षा ये दोनों देश, आबादी के लिहाज़ से, बहुत छोटे हैं। अमेरिका की आबादी से यहाँ की आबादी तिगुनी और ग्रेट-ब्रिटन की आबादी से छः गुनी है। इस हिसाब से यहाँ की आमदनी भी इन देशों से तिगुनी और छः गुनी होनी चाहिए। पर असल में है कितनी, यह ऊपर बताया जा चुका। ऐसी दशा में इस देश के शासन का ख़र्च कम होना चाहिए था। परन्तु है बात उलटी। संसार के सभी अन्य देशों से यहाँ का ख़र्च अधिक है! इसीसे देश के नेता कहते हैं कि ख़र्च हमारी सलाह से हुआ करे।

४—सरकारी कर्म्मचारियों और उहदेदारों की संख्या।

भारत के जितने अंश में अँगरेज़ी राज्य है उसकी आबादी कोई ३० करोड़ है। उसमें से कुछ कम २ लाख योरोपियन अर्थात् योरोप के निवासी हैं। इस देश में जो अँगरेज़ी सेना (गोरों की फ़ौज) रहती है उसकी और उसके बाल-बच्चों की संख्या ९१ हज़ार है। यह सेना-संख्या पूर्वोक्त २ लाख में शामिल है। इसके सिवा कोई १ लाख ऐङ्गलो इंडियन—अँगरेज़ों के वंशज—हैं जो कुछ समय से इसी देश में रहते हैं। इनमें से अधिकांश यह बताने की चेष्टा करते हैं कि हम योरप के असली निवासी हैं। यहाँ तक कि देशी क्रिश्चियन भी अपने को ऐङ्गलो इंडियन बताने की चेष्टा करते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं। मतलब यह है कि भारतीयता के सम्पर्क से ये लोग बचना चाहते हैं। इस दशा में जिन्हें सच्चे ऐङ्गलो इंडियन कहना चाहिए उनकी संख्या बहुत ही थोड़ी है। फ़ी ३ हज़ार भारतवासियों के पीछे कहीं एक ऐङ्गलो इंडियन है। इस हिसाब से फ़ी १३ अँगरेज़ीदां भारतवासियों के पीछे १ ऐङ्गलो इंडियन का परता पड़ता है। यह हिसाब बम्बई के माननीय मिस्टर चौबाल का लगाया हुआ है। भारतीयों को कितनी और ऐङ्गलो इंडियनों को कितनी सरकारी नौकरियाँ मिली हैं, इसका भी हिसाब अब आप उन्हीं का बताया हुआ सुनिए। इस देश में सरकारी ओहदों की संख्या ११,०६४ है। उनमें से ६,४९१ ओहदों, अर्थात् फ़ी सदी ५८, पर यही थोड़े से ऐङ्गलो इंडियन नियत हैं। बाक़ी फ़ी सदी ४२ पर भारतवासी हैं। ५००) और उससे अधिक मासिक वेतनवाले ४,९८४ ओहदे हैं। उनमें से ८१ फ़ी सदी, अर्थात् ४,०४२ ओहदों, पर ऐङ्गलो इंडियन हैं। ८००) और उससे अधिक वेतन के २,५०१ ओहदों में से ९० फ़ी सदी, अर्थात् २,२५९ ओहदों, पर भी यही लोग विराजमान हैं। मतलब यह कि बड़ी बड़ी तनख़्वाह वाले जितने पद हैं उन पर अधिकांश ऐङ्गलो इंडियन ही हैं। भारतीयों की पहुँच उन तक बहुत ही कम है। भारतवासियों की संख्या अधिक होने पर भी उन्हें बड़े बड़े ओहदे बहुत ही कम मिलते हैं। अभी हाल में सरकारी कर्म्मचारियों से सम्बन्ध रखनेवाले रायल कमिशन की जो रिपोर्ट निकली है उसमें माननीय मिस्टर चौबाल और माननीय जस्टिस अब्दुर्रहीम ने अपनी राय में इसी तरह की अनेक बातें लिखी हैं। अगर पूरी रिपोर्ट नहीं तो इन दो महाशयों का लिखा हुआ अंश, अँगरेज़ी जाननेवाले भारतवासियों को अवश्य पढ़ना चाहिए।

५—डिम्भ-कोश—अर्ब्बुद।

एक स्त्री के डिम्भकोष में अर्ब्बुद नाम का एक गोला (Ovarian Tumour) हो गया। जयपुर के मेव-अस्पताल में, कुछ समय हुआ, उस पर शस्त्र-क्रिया की गई। इस तरह की शस्त्र-क्रिया नई न थी। ऐसी कितनी ही क्रियायें (आपरेशन्स) यहाँ हो चुकी हैं। परन्तु जितना बड़ा और जैसा ट्यूमर (गिल्टी या गोला) इस स्त्री के उदर से निकला है वैसा आज तक कभी न निकला था। यह गोला पोला था। इसके भीतर पानी भरा था। वह निकाल कर तोला गया तो एक सौ दस पौंड अर्थात् एक मन पन्द्रह सेर निकला!

अब यह स्त्री मज़े में है। सिवा कमज़ोरी के इसे और किसी प्रकार का क्लेश नहीं।

यह रोग केवल स्त्रियों को होता है, पुरुषों को नहीं। स्त्री के गर्भाशय के दोनों तरफ़, उदर के भीतर, दो डिम्भ-कोश होते हैं। उनको अँगरेज़ी में ओवरीज़ (Ovaries) कहते हैं। उनका सम्बन्ध गर्भाशय से रहता है। वे किसी क़दर ठोस होते हैं। उनमें एक प्रकार के अण्डाकृति सूक्ष्म जन्तु या डिम्भ पैदा होते रहते हैं। महीने में एक बार वे एक नली के द्वारा गर्भाशय में आकर गिर जाते हैं। डाक्टरों का कहना है कि यदि किसी कारण से ये जन्तु गर्भाशय में नहीं जाने पाते तो बीच ही में इनका बढ़ना प्रारम्भ हो जाता है। अतएव जिस डिम्भकोश में ये उत्पन्न होते हैं उसे फुलाकर ख़राब कर देते हैं। कभी कभी दूसरा डिम्भकोश भी, पहले की वृद्धि के कारण, ख़राब हो जाता है। यहाँ तक देखा गया है कि कभी कभी गर्भाशय भी इसके चङ्गुल में फँस कर निकम्मा हो जाता है। ऐसी दशा में सर्जन इन तीनों ही को काट कर फेंक देते हैं। गर्भाशय के निकल जाने से स्त्री गर्भधारण करने योग्य नहीं रह जाती। इस रोग को डिम्भकोश का अर्ब्बुद कह सकते हैं।

जिस स्त्री पर शस्त्र-प्रयोग हुआ था उसकी सब अवस्थाओं के चित्र अन्यत्र प्रकाशित हैं। ये चित्र जयपुर के "राजपूताना फ़ोटो आर्ट स्टूडिओ" नामक प्रसिद्ध कारख़ाने के हैं। अतः मैं उक्त कारख़ाने के प्रबन्ध-कर्त्ता महाशय का कृतज्ञ हूँ।

माधव केसोट

नोट—जयपुर के "राजपूताना फ़ोटो आर्ट स्टूडिओं" के कुछ चित्र सरस्वती में पहले भी प्रकाशित हो चुके हैं। इस कारख़ाने में फ़ोटो-सम्बन्धी सभी काम होता है। फ़ोटो बढ़ा कर बड़े भी किये जाते हैं और तैल-चित्र भी बनते हैं। सिल्वर पेपर, ब्रोमाइड और अरिस्टो—जिस तरह के काग़ज़ पर चाहिए चित्र ले लीजिए। इस कारख़ाने का एक एनलार्जमेंट (Enlargement) अर्थात् बढ़ाया हुआ और दो कैबिनेट साइज़ के फ़ोटो हमें देखने को मिले हैं। वे बहुत सुन्दर हैं और फ़ोटोग्राफ़ी की कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। फ़ोटोग्राफ़ी में काम आने वाली सामग्री भी यहाँ मिलती

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। व्यवसायियों और साधारण जनों को इससे व्यवहार करके देखना चाहिए कि कैसा काम होता है।

सरस्वती-सम्पादक

६—चाय-काफ़ी के गुण-दोष।

भारतवर्ष उष्णता-प्रधान देश है। यद्यपि यहाँ के भिन्न भिन्न प्रान्तों की जल-वायु जुदा जुदा तरह की है, तथापि समष्टि-रूप से यहां की आबोहवा को गरम ही कहना चाहिए। गरम देश में पैदा हुए मनुष्यों की प्रकृति स्वभावतः ही गरम होती है। ऐसे लोगों को अधिक गरम चीज़ें मुआफ़िक़ नहीं आतीं। यह एक मोटी सी बात है। इसे एक साधारण मनुष्य भी सहज ही समझ सकता है।

भारतवर्ष अनेक विचित्रताओं का घर है। इसकी भौतिक स्थिति में जैसे विलक्षणताओं का सङ्गम है, वैसे ही मानसिक और बुद्धि-विषयक बातों में भी है। यही कारण है जो भारतवासियों के सदृश अन्ध-अनुकरण-प्रिय लोग शायद ही किसी दूसरे देश में हों। अनुकरण बुरी चीज़ नहीं। जब दो सभ्यताओं का सम्मेलन या आक्रमण-प्रत्याक्रमण होता है तब अनुकरण अनिवार्य्य सा हो जाता है। अनुकरण उत्तमताओं का आकर भी है। पर अन्ध-अनुकरण हानियों का कारण है। उसे तो विवेक, स्वाभिमान और विचारशीलता का शत्रु ही समझिए। और जहाँ विवेक, स्वाभिमान और विचारशीलता नहीं वहाँ उन्नति और सुख की आशा कहाँ? इनके अभाव से संसार की कितनी ही जातियां अवनति के गढ़े में गिरती चली जा रही हैं। अनेक कारणों से हमारे विवेक-चक्षु इतने बिगड़ गये हैं कि हम अपनी स्थिति, गति, मति इत्यादि सभी को भूल सा गये हैं।

पढ़े-लिखे लोगों में से बहुत कम ऐसे होंगे जिन्होंने चाय और क़हवे का कषाय न पिया होगा। सौ वर्ष पहले, इन वस्तुओं के नाम तक शायद इने गिने ही लोग जानते रहे होंगे। पर अब बड़े बड़े शहरों में चाय-फ़रोश आवाज़ लगाते फिरते हैं। भारतवासियों की प्रकृति चाय इत्यादि पेय-पान को चाहती है या नहीं—इस पर प्रायः कोई विचार नहीं करता। शिक्षितों में अधिकांश तो "फ़ैशन" के लिए चाय पीना सीखते हैं। और साधारण पढ़े-लिखे तथा अपढ़ लोग उनकी नक़ल करके अपना धन-बल मिट्टी में मिलाते हैं।

चाय और काफ़ी के गुण-दोषों में विशेष अन्तर नहीं। तथापि काफ़ी की अपेक्षा चाय विशेष हानिकारिणी है। काफ़ी में उतनी हानिकारिणी उष्णता नहीं जितनी चाय में है।

एक डाक्टर की राय है—

(१) काफ़ी किसी भी दशा में हितकर नहीं। शरीर के लिए आवश्यक पोषक द्रव्यों का तो उसमें लेश मात्र भी नहीं। हाँ, दूध और शक्कर, जो काफ़ी को स्वादिष्ट बनाने के लिए उसमें मिलाये जाते हैं, अलबत्ते शरीर-पोषक हैं।

(२) काफ़ी विषैला पदार्थ है। अफ़ीम, शराब और तम्बाकू की तरह एक बार इसका अभ्यास पड़ा कि फिर इससे कभी छुटकारा पाने की आशा नहीं। काफ़ी या चाय पीने की जिसे आदत पड़ गई, फिर नहीं छूटती। जब तक वह चाय या काफ़ी नहीं पी लेता तब तक उसे चैन ही नहीं पड़ती, न किसी काम में मन ही लगता है।

(३) चाय या काफ़ी कोई मामूली पेय पदार्थ नहीं। वह बड़ी प्रखर औषध हैं। हृदय, स्नायु, दिमाग़ और पचनेन्द्रियों पर उसका बुरा असर पड़ता है। ये दोनों चीज़ें मादक हैं। मादक द्रव्य उत्तेजक होते हैं। उनका प्रति दिन उपयोग करना किसी दशा में भी लाभकारक नहीं। जो अपने को किसी काम करने के योग्य रखना चाहते हैं, जो अपनी उच्च मनोवृत्तियों की उन्नति चाहते हैं, उन्हें भूल कर चाय-काफ़ी न पीना चाहिए।

काफ़ी के सेवन से मन्दाग्नि और विशेष कर स्नायु-सम्बन्धी मन्दाग्नि हुए बिना नहीं रहती। स्नायु-सम्बन्धी मन्दाग्नि को दूर करना साधारण काम नहीं। जब तक चाय या काफ़ी पीना छोड़ न दिया जाय तब तक इस रोग के मिटने की आशा करना ही वृथा है। काफ़ी-जन्य मन्दाग्नि के कुछ चिह्न ये हैं—जी मचलाना, सिर-दर्द, चक्कर आना, बेहोशी, सुस्ती, पेट में दर्द, और कभी कभी अतीसार का आक्रमण भी होना।

नित्य और कई दफ़े काफ़ी या चाय पीने से दिल धड़कने लगता है। इससे हृदय-सम्बन्धी कितने ही भयङ्कर विकार खड़े हो जाते हैं। काफ़ी से हृदय को अनावश्यक श्रम करना पड़ता है। चाय पीते ही नसों में उत्तेजना पैदा होती है; परन्तु फिर वह क्रमशः घटने लगती है। इससे नसें नाज़ुक हो जाती हैं। चाय और काफ़ी की मादकता ही इस उत्तेजना का कारण है। इसे स्नायु-समूह का साधारण पक्षाघात ही सम-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

झिए। इसीसे काफ़ी और चाय पीने वालों के सिर और पेट में दर्द हुआ करता है। हाँ, काफ़ी और चाय से तात्कालिक उत्तेजना अवश्य होती है; परन्तु इसके बदले हमारे स्नायु और मस्तिष्क-तन्तु ज्ञानशून्य से हो जाते हैं। स्नायु-सञ्चालन-क्रिया में भी कितने ही विकार होने की सम्भावना रहती है।

७—बङ्गाल के गवर्नर का विश्वविद्यालय के छात्रों को सदुपदेश।

कलकत्ता-विश्वविद्यालय की एक इन्स्टीट्यूट है। वह विश्वविद्यालय के छात्रों की शिक्षा और आमोद-प्रमोद के लिए है। गत जून में उसका वार्षिक अधिवेशन हुआ। उस समय बङ्गाल के गवर्नर, लार्ड रोनाल्डशे, ने एक वक्तृता की। उसमें उन्होंने विश्वविद्यालय के छात्रों को जो उपदेश दिया वह सुनने लायक़ है। उसके कुछ अंश का आशय नीचे दिया जाता है—

कुछ लोग कहते हैं कि पाश्चात्य शिक्षा इस देश में मानसिक उन्नति का कारण तो अवश्य हो रही है, पर यह उन्नति निर्जीव उन्नति है। इस शिक्षा की बदौलत आकांक्षायें तो बहुत बढ़ जाती हैं; पर भलाई कुछ नहीं होती। उसमें भलाई करने की शक्ति ही नहीं। हमारे जीवन पर इस शिक्षा की गहरी छाया पड़ी है। हम लोग कपड़े-लत्ते में, आचार-व्यवहार में, भाव-भाषा में एकदम वर्णसङ्कर हो रहे हैं। अब तो ख़ून में भी वर्णसङ्करता का भाव बेधड़क घुसना चाहता है।

यह कथन भ्रमपूर्ण है; तथापि शिक्षादायक ज़रूर है। आपको चाहिए कि आप बिना सोचे-समझे पाश्चात्य शिक्षा ग्रहण न करें। ऐसी शिक्षा आप ग्रहण करें अवश्य; उससे यथेष्ट उपकार भी होगा। परन्तु आप अपने देश की अतीत शिक्षा से दूर न जा पड़ें; इसकी ख़ूब ख़बरदारी रखें। योरप के आचार-व्यवहार का अनुकरण आँख मूँद कर करना कल्याण-कारण नहीं। वह शीतप्रधान देश है। वहाँ यदि मद्य-प्राशन करने का रवाज है तो इस रवाज की नक़ल आपको न करनी चाहिए। (वहाँ यदि तीन तीन चार चार चुस्त कपड़े पहनने की चाल है तो आपको भी वैसा ही करने की ज़रूरत नहीं)। पाश्चात्य शिक्षा निन्द्य नहीं। सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर, आचार्य्य जगदीशचन्द्र वसु, राजा राम-मोहन राय आदि का जो इतना यशःसौरभ फैला हुआ है उसका कारण पाश्चात्य शिक्षा ही है। अतएव मेरी सलाह है कि आप जो कुछ करें विचारपूर्वक करें। मुझे तो बीच का पथ ही निरापद मालूम होता है। उसी का स्वीकार आप कीजिए। ख़ूब समझ-बूझ कर पाश्चात्य-ज्ञान-लाभ के लिए आप दत्तचित्त हूजिए। इस बात को न भूलिए कि आप एक आध्यात्मिक जाति की सन्तान हैं। उस पवित्र आध्यात्मिक पथ से आपको विचलित न होना चाहिए। पाश्चात्य शिक्षा और कला से आप लाभ उठाइए, पर भारतीय आदर्श के स्वर्ण-सूत्र को अपने कण्ठ से न उतार फेंकिए।

कैसा सुन्दर उपदेश है। जो लोग योरप की ही शिक्षा-दीक्षा, वहीं के वस्त्र-परिच्छद और वहीं के आचार-व्यवहार के अनुकरण में मस्त हैं उन्हें हृदय की आँख खोल कर लाट साहब के इस स्वर्ण-सन्देश को सुनना चाहिए। अपनी सादी स्वदेशी पोशाक़ की उपयोगिता और औचित्य पर गान्धीजी का जो पत्र उस दिन "पायनियर" में प्रकाशित हुआ है वह भी इन महाशयों के पढ़ने और विचार करने की चीज़ है।

८—भारत के विषय में प्रधान मन्त्री की आशाजनक उक्ति।

कुछ समय हुआ, भारतेश्वर के प्रधान मन्त्री, लायड जार्ज ने, लन्दन के गिल्ड हाल में एक वक्तृता की। उसमें भारत के विषय में उन्होंने कहा—

जर्मनी को भारत से बड़ी निराशा हुई है। उसने समझ रक्खा था कि भारत में सर्वत्र असन्तोष, विद्रोह और अराजकता फैल जायगी। अतएव ब्रिटिश गवर्नमेंट को इस असन्तोष, विद्रोह और अराजकता को शमन करने के लिए अपनी सारी सेना वहीं रखनी पड़ेगी। पर उसे बेतरह निराश होना पड़ा। उसने देखा कि भारतवासियों ने ब्रिटिश साम्राज्य की सहायता बड़े ही उत्साह से की। भारत में राजभक्ति का समुद्र उमड़ उठा। अतएव, मैं समझता हूँ कि इन भारतवासियों को यह कहने का अधिकार है कि आपने हमारी राज-भक्ति देख ली। अब आप ऐसा काम कीजिए जिससे हमें यह न मालूम हो कि हम आपकी अधीन जाति हैं, किन्तु यह मालूम हो कि हम आपकी हिस्सेदार—आंशिक अर्थ और अधिकार-भोगी—जाति हैं। इस विषय का निपटारा हमें वीरतासूचक राजनीतिज्ञता से करना चाहिए। सङ्कोच-भाव और अनुदारता से तो शान्ति के समय में भी काम नहीं चलता, युद्ध के समय में तो ये बातें घातक ही समझनी चाहिए। जिस अँगरेज़-जाति ने संसार को चकित कर देने वाले साहस और वीरत्व से युद्ध-सम्बन्धी मामलों का सामना किया है उसे उसी तरह शान्ति के समय की आवश्यकताओं का भी सामना करना चाहिए।

पुस्तक-परिचय।

१—सस्तीवार्त्तामाला। भिक्षु अखण्डानन्द के द्वारा संस्थापित और सञ्चालित "सस्तुं-साहित्य-वर्धक" कार्य्यालय (बम्बई-अहमदाबाद) से निकली हुई अनेक गुजराती-पुस्तकों की समालोचनायें सरस्वती में निकल चुकी हैं। अब भिक्षु महाशय के एक प्रतिद्वन्द्वी प्रकट हुए हैं। आपका नाम है—डाह्याभाई रामचन्द्र म्हेता। आपने भी अपना दफ़्तर अहमदाबाद में खोला है और तीन चार वर्षों से सस्तीवार्त्तामाला

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नामक पुस्तकमालिका निकालना आरम्भ कर दिया है। भिक्षु महाशय का व्यवसाय पुराना है और व्यापक है। वे "साहित्य" के अन्तर्गत सभी तरह के ग्रन्थ प्रकाशित करते हैं। म्हेता महाशय ने केवल "वार्ता"-प्रकाशन के लिए कमर कसी है। नाम से तो यही सूचित होता है; भविष्यत् में वे और तरह की भी पुस्तकें प्रकाशित करें तो कौन जाने। अनुकरण-प्रियता बुरी नहीं। संसार में जो कुछ होता है उसका अधिकांश अनुकरण मूलक ही है। किसी को कोई अच्छा काम करते देख स्वयं भी वैसा ही काम करना या करने की इच्छा रखना प्रशंसनीय ही कहा जा सकता है। हाँ, इस प्रकार के कार्य्य से किसी को हानि पहुँचाने की चेष्टा न होनी चाहिए, जैसा कि, इस तरफ़ कुछ व्यवसायी खुल्लमखुल्ला कर रहे हैं। ये लोग दूसरों के नाम ही की नक़ल नहीं करते, उनके प्रत्येक काम की भी नक़ल करते हैं। अपने बचाव के लिए केवल नाम और काम में कुछ ऐसा ही अल्प-स्वल्प अन्तर कर देते हैं। यह सर्वथा निन्द्य है। ख़ुशी की बात है, म्हेता महाशय का अनुकरण वैसा नहीं। जान पड़ता है, वे केवल "वार्ता"-विषयक सस्ती सस्ती पुस्तकें प्रकाशित करेंगे; सारे "साहित्य" में अपनी माला की व्याप्ति न होने देंगे।

म्हेता महाशय ने अपनी माला की ६ पुस्तकें भेजने की कृपा की है। इन सब पुस्तकों पर सुन्दर जिल्द है। काग़ज़ पतला, पर छपाई साफ़-सुथरी है। आकार मँझोला है—सब पुस्तकें एक ही आकार की हैं। सभी की भाषा गुजराती है। इनका संक्षिप्त परिचय लीजिए—

पहली पुस्तक है—**छत्रपति राजाराम**—इसकी पृष्ठ-संख्या ३५४ और मूल्य रुपया १—४—० है। इसे श्रीयुत गोवर्धनदास कहानदास अमीन ने लिखा है। इसमें सतारे के पेशवा राजाराम का वृत्तान्त है। यह वृत्तान्त कहानी के ढँग पर, सरस भाषा में, लिखा गया है। एक बँगला और दो मराठी-पुस्तकों के आधार पर इसकी रचना हुई है। शिवाजी के बाद मराठी राज्य की नीव हिल गई थी। छत्रपति राजाराम के समय में उसे फिर से दृढ़ता प्राप्त हुई। प्रल्हाद-पन्त, सन्ताजी, तानाजी, राजमाता जीजाबाई और राजपत्नी ताराबाई आदि जो स्त्री-पुरुष इस कार्य्य में सहायक हुए थे उन सबके कार्य्य-कलापों का भी वर्णन इस पुस्तक में है। दूसरी पुस्तक का नाम है—**आनन्द-मन्दिर**। इसकी पृष्ठ-संख्या ३०६ और मूल्य १) है। इसके प्रणेता स्वयं प्रकाशक महाशय, श्रीयुत डाह्यभाई रामचन्द्र म्हेता, हैं। यह भी एक कहानी है। श्रीयुत नृसिंहप्रसाद वसु की लिखी हुई "अमिया" नामक बँगला-पुस्तक के आधार पर यह लिखी गई है। मूल पुस्तक के कथानक में बहुत कुछ फेर फार करके लेखक ने इसे गुर्जर-समाज के अनुकूल कर दिया है। अतएव इसमें बहुत कुछ नवीनता आ गई है। इसमें वर्णन की गई घटनायें धर्म्म और समाज से सम्बन्ध रखती हैं। कथा के बहाने इसमें कर्म्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, पुनर्जन्म, ईश्वर, जीव, माया, आदि का विवेचन किया गया है। तीसरी पुस्तक—**सुधरलेली सीता**—में ३५४ पृष्ठ हैं। मूल्य है १ रुपया २ आने। इसे श्रीयुत चीमनलाल रतनलाल देशाई ने लिखा है। यह बँगला-पुस्तक माडेल भगिनी का परिवर्त्तित और परिवर्द्धित रूपान्तर है। इसमें सीता नाम की एक "सुधरी" हुई लड़की का चरित्र-चित्र है। नये ढँग के सभ्य और सुधरे हुए पिता की बदौलत स्वतन्त्रता पाने पर लड़कियाँ कहाँ तक बिगड़ जाती हैं, यही इसमें दिखाया गया है। पर समाज का यह एक जघन्य चित्र है। शिक्षा-प्राप्ति से यदि मनुष्य का चरित सुधर सकता है तो स्त्रियों और लड़कियों का भी सुधार सकता है। दुराचार समाज के किसी अंश-विशेष के ही हिस्से में नहीं पड़ा। मनुष्य चाहे नये ढँग का हो, चाहे पुराने ढँग का, दुर्गुण और दुराचार सभी में पाये जा सकते हैं। कारणमात्र उपस्थित होना चाहिए। चौथी पुस्तक का नाम है—**योरोप नो रण-रङ्ग**। पृष्ठ-संख्या इसकी २६३ और मूल्य १४ आने है। इसके लेखक हैं—श्रीयुत गोवर्धनदास कहानदास अमीन। यह पुस्तक हिन्दी, मराठी और अँगरेज़ी के समाचार-पत्रों के आधार पर लिखी गई है। कानपुर के प्रसिद्ध पत्र "प्रताप" से भी बहुत सी बातें ली गई हैं। इसमें यूरप के वर्तमान युद्ध की मूलकथा, जर्मनी और आस्ट्रिया की युद्ध-लिप्सा, जर्मनी की राज्य-विस्तार-लालसा, युद्ध में बेलजियम, फ़्रांस और इँगलेंड के लिप्त होने का कारण—इत्यादि वर्णन किया गया है। अपने विषय की यह बड़ी अच्छी पुस्तक है। पाँचवीं पुस्तक है—**राजा छत्रसाल**। यह साढ़े चार सौ पृष्ठों में समाप्त हुई है। मूल्य ह सवा रुपया। प्रकाशक महाशय, श्रीयुत डाह्याभाई, ने ही इसकी रचना की है। यह इसी नाम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की एक मराठी-पुस्तक का अनुवाद है। इसमें बुँदेलखण्ड के पराक्रमी और तेजस्वी राजा छत्रसाल की आख्यायिका, बड़ी अच्छी भाषा में, लिखी गई है। इतिहास की नीरस बातें छोड़ दी गई हैं। छत्रसाल के चरित का केवल उतना ही अंश लिया गया है जितना इस "वार्ता" या कथा को पल्लवित करने के लिए आवश्यक था। जिसका वर्णन इस पुस्तक में है वह वही छत्रसाल है जिसने औरङ्गज़ेब के चङ्गुल से बुन्देलखण्ड को छुड़ाया था। छठी पुस्तक का नाम है—**शान्तिनिकेतन**। इसकी पृष्ठ संख्या ३४२ और मूल्य सवा रुपया है। पूर्वोक्त श्रीयुत डाह्याभाई रामचन्द्र म्हेता ने ही इसकी भी रचना की है। प्रसिद्ध बँगला-लेखक बाबू दुर्गादास लाहिरी की पुस्तक "सुख ओ शान्ति" का यह घटाया बढ़ाया हुआ अनुवाद है। है तो यह कहानी, पर बड़ी अच्छी है। इसमें कथाछल से धर्म के तत्त्वों का निरूपण योग्यता-पूर्वक किया गया है। इन सब पुस्तकों के मिलने का पता—

व्यवस्थापक, सस्ती वार्तामाला,
दाणापीठ—नवोवास,
अहमदाबाद

❋

२—**मानवशास्त्र**—यह बड़े आकार की पुस्तक है। इसकी भाषा गुजराती और पृष्ठ-संख्या लगभग ५०० के है। छपाई और काग़ज़ उत्तम है। छोटे बड़े कोई २०० चित्रों से अलङ्कृत है। बड़ी मनोहर और दृढ़ जिल्द चढ़ी हुई है। इसके प्रणेता हैं—श्रीयुत गिरधरलाल गोविन्दजी महेता। आपका पता है—३१४, फ्रेनालाजिकल हाल, बम्बई। आपही को लिखने से शायद यह मिलती है। पुस्तक का विषय प्रायः अज्ञात-पूर्व है। इस कारण इसे बड़े चाव से पढ़ने की इच्छा होती है। देशी भाषाओं में से शायद ही किसी और भाषा में इस विषय की इतनी बड़ी पुस्तक आज तक प्रकाशित हुई हो। एक प्राचीन श्लोक है—

आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषणेन च।
नेत्रवक्त्रविकारेण लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः॥

अर्थात् मनुष्य के आकार, इशारे, गति, चेष्टा, भाषण तथा नेत्र और मुख के विकार से उसके मन का हाल मालूम होजाता है। इससे सूचित होता है कि इन बातों के आधार पर मन का हाल जानने की कोई विद्या, किसी समय, भारत में प्रचलित थी। पर अब इस विषय का कोई अच्छा ग्रन्थ प्राप्य नहीं। हाँ, सामुद्रिक-शास्त्र से सम्बन्ध रखने वाली कुछ छोटी मोटी पुस्तकें अब भी पाई जाती हैं; परन्तु उनमें वे सब बातें नहीं जो पश्चिमी देशों के विद्वानों के ग्रन्थों में पाई जाती हैं। इसी लिए इस शास्त्र का परिशीलन करके मेहता महाशय ने उन विद्वानों के ग्रन्थों तथा अपने निज के तजरुबे से इस पुस्तक का प्रणयन किया है। आधुनिक काल में पहले पहल इस विद्या का प्रचार जर्मनी के एक विद्वान् ने किया। फिर योरप और अमेरिका के अन्यान्य देशों के विद्वानों ने भी इसका अनुशीलन करके ग्रन्थ-रचना की और इस विद्या को क्रम क्रम से उन्नति के पथ पर पहुँचाया। यदि यह सब सामग्री न मिलती तो शायद मेहता महाशय प्रस्तुत पुस्तक लिखने में समर्थ न होते। क्योंकि, यद्यपि उन्होंने कितने ही भारतीय ग्रन्थों से भी सहायता ली है, तथापि उनके इस ग्रन्थ का मुख्य आधार पाश्चात्यों ही के ग्रन्थ और उन्हीं के अनुभव हैं।

मेहता महाशय ने इस पुस्तक को दो भागों में विभक्त किया है। पहले में ७ प्रकरण हैं। इस भाग में आपने मस्तिष्क के भिन्न भिन्न अंशों की रचना आदि के अनुसार मनुष्य की भिन्न भिन्न शक्तियों का वर्णन किया है। आपने स्वयं ही अनेकानेक मस्तिष्कों की परीक्षा करके सिद्धान्तों की स्थापना की है। इस विद्या के सामान्य सिद्धान्त, मस्तक के अवयव-विभाग और कार्य्य आदि का विवरण भी इसी भाग में है। दूसरे भाग में मानसिक शक्तियों की व्याख्या, उनके स्थान, उनके कार्य्य, उनकी न्यूनाधिकता आदि सैकड़ों बातों का विवेचन है। अनेक देशी और विदेशी आदमियों के मुख-चित्र देकर आपने अपने कथनों और सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण किया है। किस प्रकार की मुखचर्य्या या मस्तक-रचना-वाले मनुष्य में कौन शक्ति या वृत्ति कितनी प्रबल या निर्बल होती है, यह तथा और भी शतशः बातों का निरूपण योग्यता-पूर्वक करने की अच्छी चेष्टा आपने की है। मुखाकृति और मस्तक की परीक्षा से ही आपने मानसिक शक्तियों किंवा विकारों के ज्ञान-निदर्शन की विधि बतलाई है। इसीसे आपने इस पुस्तक का एक और भी नाम रक्खा है। वह है—मस्तिष्क-विद्या और मुखसामुद्रिक-शास्त्र। आपकी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राय है कि इस विद्या से मनुष्य का बहुत कुछ कल्याण-साधन हो सकता है। आपके निश्चित सिद्धान्त कहाँ तक ठीक हैं, इसकी परीक्षा होनी चाहिए और यदि वे निर्बाध निकलें तो इस शास्त्र का अवश्य प्रचार होना चाहिए। तब तक गुजराती भाषा जाननेवालों को मेहता महाशय की यह पुस्तक लेकर उन्हें उनके अनुष्ठित कार्य्य में सहायता करनी चाहिए।

❋

३—प्रियदर्शि-प्रशस्तयः—इस बड़े आकार की पुस्तक की पृष्ठ-संख्या ८×५१×४० है। मूल्य इस पर लिखा नहीं। इसका संग्रह और प्रकाशन पण्डित रामावतार शर्मा, एम० ए०, ने किया है। आप बाँकीपुर में पटना-कालेज के प्रधान संस्कृताध्यापक हैं। आपके कई लेख सरस्वती में निकल चुके हैं। आपका संक्षिप्त चरित भी प्रकाशित हो चुका है। अतएव आपका विशेष परिचय कराने की आवश्यकता नहीं। आपकी यह संग्रह-पुस्तक बड़े महत्त्व की है। यद्यपि अशोक की प्रशस्तियों पर आज तक अनेक लेख प्रकाशित हो चुके हैं; वे पुस्तकाकार में भी निकल चुकी हैं; तथापि पाण्डेयजी के इस संग्रह में बहुत विशेषता है। इसके आरम्भ में आपने एक लम्बा उपोद्घात लिखा है। वह अँगरेज़ी और संस्कृत दोनों भाषाओं में है। उसमें आपने चन्द्रगुप्त का चरित संक्षिप्त और अशोक का विस्तारपूर्वक दिया है। अशोक की प्रशस्तियों से जो बातें मालूम हुई हैं उन सबका समावेश आपने उसमें किया है। साथ ही आपने और और बातें भी लिखी है। इसके अनन्तर, पुस्तक के मुख्य अंश में, आपने अशोक की मूल प्रशस्तियों की नक़ल दी है। ये प्रशस्तियाँ प्राकृत में हैं। उनके नीचे उनका संस्कृत-रूप दिया है। तदनन्तर उनका भावार्थ अँगरेज़ी में लिखा है। अशोक के जितने स्तम्भ-लेख, शिला-लेख और फुटकर लेख (लघु शिलालेख) आज तक देखे गये हैं वे सब इसमें आ गये हैं। इसके बाद आपने ३२ पृष्ठों में प्रशस्तियों के पाठान्तर और ८ पृष्ठों में टिप्पणियाँ दी हैं। इस प्रकार आपने अशोक की प्रशस्तियों के इस संस्करण को सर्वाङ्गपूर्ण बना दिया है। आपकी यह पुस्तक बड़े काम की है। अतएव संग्रह करने योग्य है।

❋

४—Vedantism—यह पुस्तक अँगरेज़ी में है। यह भी पाण्डेय रामावतारजी शर्म्मा की रचना है। प्रियदर्शि-प्रशस्तयः नामक अशोक की प्रशस्तियों की कापी के साथ, मौज में आकर, पाण्डेयजी ने इस पुरानी पुस्तक की भी एक कापी भेज दी है। इसे छपे सात आठ वर्ष हुए। इसका आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ८८ और मूल्य १ रुपया है। १९०७—०८ में कलकत्ता-विश्वविद्यालय ने आपको वेदान्त-विषय पर व्याख्याता नियत किया था। उस समय आपने वेदान्त-विषय पर जो व्याख्यान दिये थे उन्हीं का संग्रह इस पुस्तक में है। अँगरेज़ी जानने वालों को—विशेष कर वेदान्त के प्रेमियों को—पाण्डेयजी की यह पुस्तक अवश्य देखना चाहिए। आप की कोई भी रचना विशेषता से ख़ाली नहीं होती। इसमें भी यह गुण पाया जाता है और अधिकता से पाया जाता है। वेदान्त के असली तत्त्व, थोड़े में, बतला देने के सिवा सांख्य और योग आदि अन्य दर्शनों के तत्त्व भी इसमें बताये गये हैं और उन पर तुलनात्मक विचार भी किया गया है। वेदान्त ने अन्य दर्शनों के सिद्धान्तों का जो खण्डन किया है उसकी भी बानगी पाण्डेयजी ने दिखाई है। पर वेदान्त पर विचार करते समय आपने बादरायण और शङ्कर की उक्तियों का भी विचार कर डाला है और अपना मत प्रकट करने में ज़रा भी सङ्कोच नहीं किया। वेदान्त की दृष्टि से ईश्वर या ब्रह्म के अस्तित्व के विषय में आपने लिखा है—

"Denial of everything would itself imply the existence of Knowledge or Chit and this Chit is the Brahman."

बहुत ठीक। जीवन्मुक्त अर्थात् कर्म्म-योगी के विषय में आपने जो कुछ लिखा है वह भी बड़ी योग्यता से लिखा है। ख़ूब समझ में आता है। आपकी व्याख्या मन में जम जाती है। पाण्डेयजी की विद्वत्ता में सन्देह नहीं। इस पुस्तक की एक कापी भेजने के लिए हम आप के बहुत कृतज्ञ हैं। इससे हमने बहुत कुछ ज्ञान-प्राप्ति की।

❋

५—कृष्णनीती—यह पुस्तक उर्दू भाषा और फ़ारसी लिपि में है। इस पर बड़ी सुन्दर जिल्द है। काग़ज़ अच्छा और छपाई बहुत साफ़ है। श्रीकृष्ण के चरित से सम्बन्ध

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[३]

डिम्भ-कोश-अर्व्वुद से पीड़ित स्त्री।

(पेट से निकाले गये गोले को उसीके गोद में देखिए)

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रखने वाले छोटे छोटे कई हाफ़-टोन चित्रों से अलङ्कृत है। इसकी पृष्ठ-संख्या लगभग १५० और मूल्य २ रुपये है। पीरज़ादा सैयद मुहम्मद सादिक़, कारकुन हलक़तउल-मशायख़, देहली, को लिखने से यह मिलती है। इसके लेखक हज़रत ख़्वाजा हसन निज़ामी साहब हैं। आप शायद पहले मुसल्मान हैं जो आज कितने ही सालों से इस चेष्टा में हैं कि हिन्दुओं और मुसल्मानों का पारस्परिक वैमनस्य दूर हो जाय। लेखों और लेक्चरों द्वारा आप सदा ही हिन्दू-महात्माओं के यशोगान और हिन्दुओं के जातीय गुणों का व्याख्यान किया करते हैं। यह पुस्तक आपने इसलिए लिखी है जिसमें श्रीकृष्ण के सच्चे चरित से मुसल्मान परिचित हो जायँ और उनके विषय में जो भ्रममूलक बातें मुसल्मानों के हृदय में बैठ गई हैं वे दूर हो जायँ। इस उद्देश में आप यथेष्ट कृत-कार्य्य हुए हैं। कृष्णचरित को आपने बड़ी भक्ति और बड़ी श्रद्धा से लिखा है। मुख्य मुख्य सभी घटनाओं का उल्लेख आपने किया है, पर निर्मूल घटनाओं का विस्तार न करके केवल इतना ही लिख दिया है कि कृष्ण के चरित से उनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं। हम आपके इस सदाशयत्व और उदार भाव का हृदय से अभिनन्दन करते हैं और आशा करते हैं कि मुसल्मान सज्जन ख़्वाजा साहब की इस पुस्तक से शिक्षा ग्रहण करेंगे।

❋

६—शत्रुञ्जय-तीर्थोद्धार-प्रबन्ध—जैन-भाण्डारों, मन्दिरों और विद्वानों के पुस्तक-संग्रहों में प्राचीन भारत की अनन्त ऐतिहासिक सामग्री भरी पड़ी है। कुछ समय से इस सामग्री का उपयोग होने लगा है और प्राचीन इतिहास के प्रकाशक प्रबन्ध छप छप कर निकलने लगे हैं। एतदर्थ जैन-विद्वान् सारे भारत की कृतज्ञता के पात्र हैं।

गुजरात में पालीटाणा के पास एक बहुत पुराना पहाड़ है। उसका नाम है शत्रुञ्जय-पर्वत। वह जैनियों का बहुत बड़ा तीर्थ है। वहाँ नये पुराने सैकड़ों जैन-मन्दिर हैं। ईसवी सन् के बहुत पहले से ही इस स्थान की गणना क्षेत्रों में है। इसके मन्दिरादि का कई बार नाश और कई बार उद्धार हुआ। इसकी महिमा तथा मन्दिर-विनाश और उद्धार का वर्णन जैनों के प्रणीत कई ग्रन्थों में है। इसका अन्तिम उद्धार कर्म्मासाह नाम के एक धनी सेठ ने, संवत् १५८७ में, कराया था। विवेकधीर-गणि नामक एक तत्कालीन जैन पण्डित ने इस उद्धार का वर्णन पद्य-बद्ध लिखा और नाम रक्खा—शत्रुञ्जय-तीर्थोद्धार-प्रबन्ध। प्रस्तुत पुस्तक उसी का छपा हुआ सुन्दर संस्करण है। यह संस्करण श्रीयुत मुनि जिनविजयजी की कृपा, सदुद्योग, श्रम और पाण्डित्य का प्रसाद है। इसमें पहले तो शत्रुञ्जय-पर्वत का परिचय है। फिर उसका आधुनिक वृत्तान्त है। इस वृत्तान्त में तीर्थ के मन्दिरादि का वर्णन भी है। इसके अनन्तर विवेकधीर गणि के संस्कृत-प्रबन्ध के ऐतिहासिक अंश का सारांश हिन्दी में है। यह सारांश इस पुस्तक का सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण भाग है। इससे अनेक नई नई ऐतिहासिक बातें ज्ञात होती हैं। इसके आगे एक प्रशस्ति, संस्कृत में, है। यह प्रशस्ति कविवर लावण्य-समय की लिखी हुई है और तीर्थ के मुख्य मन्दिर के द्वार पर खुदी हुई है। इसमें भी कर्म्मासाह के किये हुए जीर्णोद्धार का संक्षिप्त वर्णन है। इसके अनन्तर पुस्तक का प्रधान अंश—शत्रुञ्जयतीर्थोद्धार-प्रबन्ध—दो उल्लासों में, है। पहले उल्लास में ९३ संस्कृत-श्लोक हैं, दूसरे में १६९ श्लोक। पुस्तकान्त में प्रबन्धकर्त्ता ही की लिखी हुई नामावलियाँ हैं। उनमें देहली के बादशाहों, गुजरात के सुल्तानों और अणहिल्लपट्टन के राजाओं के नाम और शासन-काल आदि का उल्लेख है। इसके सिवा और भी कुछ ऐतिहासिक बातें इस पुस्तक में हैं।

इस इतने परिचय से पाठक समझ जायँगे कि ऐतिहासिक दृष्टि से यह पुस्तक कितने महत्त्व की है। इसकी एक कापी भेजने के लिए हम इसके सम्पादक मुनिवर जिनविजयजी के बड़े कृतज्ञ हैं। पुस्तक अच्छी छपी है। सुन्दर जिल्द चढ़ी हुई है। आरम्भ में शत्रुञ्जयतीर्थ का एक चित्र है। बड़ौदे के सेठ लीलाभाई रायचन्द जौहरी की मदद से यह पुस्तक छपी है। अतएव उनका भी एक चित्र लगा दिया गया है। मूल्य इसका १० आने है और मिलने का पता है—श्रीजैन-आत्मानन्द-सभा, भावनगर।

❋

७—मेगास्थनीज़ का भारत विवरण—इस बड़े आकार की पुस्तक की पृष्ठ-संख्या १६७ और मूल्य ८ आने है। आरे की नागरी-प्रचारिणी सभा ने इसका प्रकाशन किया है और वही इसे बेचती है। छपाई और काग़ज़ बहुत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

साधारण है। भारत के चक्रवर्ती राजा चन्द्रगुप्त के दरबार में ग्रीस-देश के राजा का एक दूत, बहुत दिनों तक, रहा था। उसका नाम था मेगास्थनीज़। उसने अपनी भाषा में उस समय के भारत का वर्णन लिखा था। उसकी वह पुस्तक अप्राप्य है। परन्तु उसके अवतरण और ग्रन्थकारों के ग्रन्थों में पाये जाते हैं। विद्वानों ने उन अवतरणों को एकत्र करके पुस्तक का रूप दे दिया है। वह ग्रीक भाषा में है। मैकक्रिंडल नाम के एक साहब ने उसका अनुवाद, अँगरेज़ी में, कर डाला है। भारतवर्ष की प्राचीन बातों की ज्ञान-प्राप्ति में वह अनुवाद बहुत काम देता है। हिन्दी की यह प्रस्तुत पुस्तक उसी अनुवाद का अनुवाद है। अनुवादक हैं— बाबू अवधबिहारीशरण, एम० ए०, बी० एल०। ऐतिहासिक दृष्टि से यह अनुवाद बड़े महत्त्व का है। इसके पाठ से भारत की दो ढाई हज़ार वर्ष की पुरानी बातें मालूम होती हैं। उनमें से कितनी ही बातें बड़ी अद्भुत हैं। पुस्तक-पाठ से मनोरञ्जन के सिवा इतिहास-ज्ञान की प्राप्ति भी होती है। दुःख की बात है, इसके एम० ए० पदवीधारी अनुवादक ने एक उपोद्घात लिखने की ज़रूरत नहीं समझी। आठ नौ सतरों की एक भूमिका लिख कर ही आपने अपने कर्त्तव्य की इति-श्री कर दी है। मेगास्थनीज़ कौन था, मैकक्रिंडल कौन था, मूल पुस्तक कब और किस तरह लिखी गई, उसमें उल्लिखित विषयों की अवगति किस तरह हुई, लेखक का कथन कहां तक विश्वास-योग्य है—इत्यादि कुछ भी बताने की कृपा आपने नहीं की। इस कारण इस अनुवाद की महिमा बहुत कम हो गई है। अगले संस्करण में इस त्रुटि की पूर्त्ति होनी चाहिए।

❋

८—हृदय-प्रदीप—आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या २७ + ७४, मूल्य ६ आने, मिलने का पता—वृद्धिचन्द्रजी-जैन-सभा, हैरिस रोड, भावनगर। इसके मूल लेखक के नाम-धाम का पता नहीं। विषय इसका आध्यात्मिक है। मूल संस्कृत-पद्यों में है। कुल ३६ पद्य हैं। पुस्तक जैन-धर्म्म से सम्बन्ध रखती है; परन्तु जो कुछ इसमें है वह सभी धर्म्मों के अनुयायियों के जानने योग्य है। वेदान्त की सर्वमान्य बातों के सिवा इसमें योगशास्त्र के तत्त्व भी निहित हैं। कविता प्रासादिक है। एक नमूना लीजिए—

मनोलयान्नास्ति परो हि योगो ज्ञानन्तु तत्त्वार्थविचारणाच्च।
समाधिसौख्यान्न परञ्च सौख्यं संसारसारं त्रयमेतदेव॥

इसी तरह के सुन्दर और सरस पद्य इसमें हैं। मूल श्लोकों के नीचे उनका अनुवाद गुजराती भाषा में है। इसके अनन्तर मुख्य मुख्य शब्दों और पदों आदि की साधनिका अँगरेज़ी में है। फिर मूल का भावार्थ अँगरेज़ी में है और उसी के नीचे विवरणात्मक टिप्पणियाँ भी अँगरेज़ी में ही हैं। यह पुस्तक भावनगर के जज परलोकवासी लल्लूभाई मोतीचन्द मेहता, बी० ए०, एल-एल०बी०, को समर्पित है। इस कारण, आरम्भ में, उनका जीवनचरित भी अँगरेज़ी में दिया गया है। पुस्तक का सम्पादन श्रीयुत शाह मोतीलाल मूलजीभाई ने किया है।

❋

९—सर्विया का इतिहास—आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ८०, छपाई और काग़ज़ अच्छा, मूल्य ५ आने, मिलने का पता—राजपूताना-हिन्दी-साहित्य-सभा, झालरापाटन। यह पुस्तक झालरापाटन के नरेश राजराना भवानीसिंह बहादुर की कृपा का फल है। इसकी भूमिका में लिखा है—"यह सरकार का वह व्याख्यान है जिसे उन्होंने झालावाड़ युद्ध-व्याख्यान में पढ़ कर सुनाया था।" इसे—"श्रीयुत पं० गिरधर शर्म्मा ने जहाँ तहाँ शब्दों में फेरफार कर इसे हिन्दी जानने वाले सज्जनों के लिए देवनागरी में लिख दिया।" इससे सूचित है कि यह व्याख्यान पहले देवनागरी लिपि में न था। सम्भव है, यह फ़ारसी-लिपि में रहा हो। क्योंकि इसकी भाषा प्रायः सर्वत्र उर्दू है। इसमें संस्कृत-शब्द बहुत ही कम हैं। तथापि भाषा क्लिष्ट नहीं। वह सरल—सब की समझ में आने योग्य—है। सर्विया पर आज तक अनेक आपदायें आई हैं। परन्तु अपनी स्वातन्त्र्य-प्रियता और वीरता के कारण यह छोटा सा देश गिर गिर कर भी ऊँचा उठा है। वर्तमान युद्ध के आरम्भ का कारण यही है। इसके इतिहास से बहुत बातें सीखी जा सकती हैं। उनमें से प्रधान बात यह है कि वीर जाति, मौक़ा मिलते ही, अपनी खोई हुई मान-मर्य्यादा को फिर से अवश्य ही प्राप्त कर सकती है।

❋

१०—श्रीवर्द्धमानचरित—इस मँझोले आकार की जिल्ददार पुस्तक की पृष्ठ-संख्या १३५ और मूल्य १२ आने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। टाइप बड़ा है। छपाई और काग़ज़ अच्छा है। प्रकाशक—मेहरदास लक्ष्मणदास जैनी, संस्कृत-पुस्तकालयाध्यक्ष, लाहोर को लिखने से मिलती है। यह जैनमुनि स्वामी ज्ञानचन्द्र की लिखी हुई है। आपका परलोकवास हुए कोई २ वर्ष हुए। इसमें जैनों के चौबीसवें तीर्थङ्कर वर्द्धमान महावीर का जीवन-चरित है। अनेक पुस्तकों के आधार पर यह चरित, सरल भाषा में, लिखा गया है। लेखक महाशय की मातृ-भाषा हिन्दी न थी। इस कारण पुस्तक में भाषा-सम्बन्धिनी त्रुटियाँ रह गई हैं। तथापि चरित के पाठ—अपने अन्तिम तीर्थङ्कर के यशोगान—से जैनी लोग बहुत कुछ पुण्य-सञ्चय कर सकते हैं।

❋

११—भारतीय गान—आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या ७८, टाइप बड़ा, काग़ज़ साधारण, मूल्य ४ आने, मिलने का पता—बाबू कन्हैयालाल, बुकसेलर, चौक, पटना सिटी। इसकी भूमिका के अनुसार इसमें—"सदाचार, भक्ति, देश-प्रेम, स्त्री-शिक्षा, अमेल-विवाह, मांसभक्षण, नशेबाजी, वेश्या विषय आदि के सम्बन्ध में शिक्षाप्रद ग़ज़ल, भजन, दादरा, लावनी, होली आदि उत्तम उत्तम गानों का समावेश किया गया है"। यह सब यथार्थ है। जिन विषयों पर इसमें गाने की चीज़ें हैं वे सब अच्छे हैं। यह गान-संग्रह बाबू दुर्गा-प्रसाद वर्म्मा का किया हुआ है।

❋

१२—श्रीगुणानुराग-कुलक—इसका आकार मध्यम, पृष्ठ-संख्या ४८४ और मूल्य—"सदुपयोग"—है। टाइप मोटा (जैन-ढँग का) है, छपाई और काग़ज़ अच्छा है, जिल्द बँधी हुई है। इसकी एक कापी कपूरचन्द भीखाजी ने सियाना-(मारवाड़) से भेजी है। इस पुस्तक में श्रीजिनहर्ष-गणि-निर्म्मित २८ आर्य्या-वृत्त प्राकृत भाषा में हैं। परन्तु मुनिराज यतीन्द्र-विजयजी ने उनका विस्तृत विवेचन करके ग्रन्थ का आयतन मूल से कई गुना बढ़ा दिया है। मुनि-महाशय ने प्राकृत-गाथाओं की संस्कृत-छाया, उनका शब्दार्थ और उनका भावार्थ भी लिख दिया है। आपका किया हुआ "विवेचन" बहुत सुन्दर और शिक्षादायक है। पुस्तक की भूमिका में आपने लिखा है—"जो मनुष्य विवेचनगत सिद्धान्तों के अनुसार अपने चालचलन को सुधारेगा वह संसार में आदर्श-पुरुष बन कर अपना और दूसरों का भला करेगा।" यह निःसन्देह सच है। पर इन सिद्धान्तों की साधना बहुत कठिन है।

❋

१३—आनन्दप्रकाश-पिङ्गल, प्रथम भाग—इस छोटी सी १६ सफ़े की पुस्तक का मूल्य एक आना है। लेखक—बाबू बारेलाल, अध्यापक, सी० मिशन ब्रांच स्कूल, सदर बाज़ार, जबलपुर, से मिलती है। इसमें छन्दःशास्त्र के प्रारम्भिक नियम और अधिक काम में आनेवाले वृत्तों के लक्षण और उदाहरण, पद्य में, दिये गये हैं।

❋

१४—विज्ञानार्थप्रकाशिका—आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या ३२, छपाई और काग़ज़ बहुत साधारण, मूल्य—आध आना पोस्टेज, लेखक—बाबू राजेन्द्रनारायणसिंह ज़मींदार, पंजवारा, भागलपुर। पुस्तक में धर्म्म, कर्म्म, उपासना, ज्ञान, रासलीला का आध्यात्मिक अर्थ, और दान-धर्म्म का संक्षिप्त विवरण है। संस्कृत-ग्रन्थों से, जगह जगह, अवतरण दिये गये हैं। लेखक ही से मिलती है।

❋

१५—दयानन्द-प्रश्नोत्तरी—इस बड़े आकार की ६४ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य पुस्तक में कहीं नहीं लिखा। इसके लेखक पण्डित रामनारायण शास्त्री हैं। आप नासिक में "पञ्चराज" नामक पत्र के सहकारी सम्पादक हैं। आपही ने इसकी एक कापी भेजने की कृपा की है। १९१४ ईसवी में इन्दौर के कुछ आर्य्य-समाजियों ने आपसे २५ प्रश्न किये। प्रश्न प्रायः पुराण-वर्णित कथाओं और घटनाओं के सम्बन्ध में थे। उन्हीं के उत्तर इस पुस्तक में हैं। उत्तरों में बहुत कुछ युक्ति और प्रमाण से काम लिया गया है, पर शास्त्रीजी के कथन में यत्र तत्र कटुता आ गई है। कहीं कहीं तो उसकी मात्रा बहुतही बढ़ गई है। धार्मिक विवाद में यह बात न होनी चाहिए। मालूम नहीं, इसके नाम के पूर्वार्द्ध में "दया-नन्द" लिखने की क्या आवश्यकता थी। पुस्तक शायद शास्त्रीजी को ही लिखने से मिलती है।

❋

१६—माता के उपदेश—इस पुस्तक में ६० सफ़े हैं, आकार मध्यम है, मूल्य ४ आने है। अखौरी सच्चिदानन्द-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सिंह, सरस्वती-भाण्डार, बाँकीपुर, इसके प्रकाशक और पण्डित चन्द्रशेखर शर्म्मा इसके लेखक हैं। इसका विषय इसके नाम से ही प्रकट है। उसमें ७ "उपदेश" या अध्याय हैं। उनमें एक कल्पित माता ने, बात-चीत के द्वारा, मातृ-कर्तव्य, स्त्री-जीवन की महत्ता, ऋषि बनने की आवश्यकता और सत्पुत्र बनाने के लिए यत्न आदि पर कन्याओं को सदुपदेश दिया है।

❋

१७—पुष्पाञ्जलि—आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ३२ छपाई साधारण, मूल्य १ आना, संग्रहकार बाबू मांगीलाल गुप्त बजाज़, नीमच। इसके पूर्वार्द्ध में हिन्दी-अनुवाद-सहित संस्कृत के सुभाषित और उत्तरार्द्ध में कई हिन्दी-कवित्त हैं। संग्रह छोटा, पर सरस और मनोहारी है।

❋

नीचे जिन पुस्तकों के नाम दिये जाते हैं वे भी मिल गई हैं। भेजने वाले महाशयों को धन्यवाद—

(१) पण्डित जगन्नाथराय
(२) बढ़ई लोगों की वर्तमान अवस्था
(३) सद्दलपद्यमाला
(४) सच्चा आत्मसमर्पण
} प्रेषक, पं० छोटेराम शुक्ल, औरङ्गाबाद।

(५) जैन-धर्म्म की क़यामत—प्रकाशक, आत्मानन्द-जैन-ट्रैक्ट-सोसायटी, अम्बाला शहर।

(६) आरोग्यदर्पण, खण्ड १ और २—लेखक, पण्डित जगन्नाथ शर्म्मा राजवैद्य, जानसेनगंज, इलाहाबाद।

(७) श्रीबदरी-केदार-पथ-प्रदर्शिका, तीसरा संस्करण } प्रेषक, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, गढ़वाल।

(८) मैथिल-हित—लेखक, पण्डित महेन्द्रनारायण झा, मधेपुरा, भागलपुर।

(९) जैन श्वेताम्बरी तेरापन्थी सभा की तृतीय वार्षिक रिपोर्ट } सम्पादक, श्रीयुत केसरीचन्द कोठारी, ३०।२, क्लाइव स्ट्रीट, कलकत्ता।

(१०) भार्गव-ब्राह्मण-महासभा के सभापति का व्याख्यान
(११) भार्गव ब्राह्मण-महा सभा के प्रथम अधिवेशन की स्वागतकारिणी समिति के सभापति का भाषण
} प्रेषक, मन्त्री, महासभा, दिनारा, ग्वालियर।

(१२) श्रीरामलीला-शिक्षासार—प्रकाशक, पण्डित मोहनलाल गौड़, देहरादून।

(१३) राजराजेश्वरीस्तोत्रम्—प्रेषक, पण्डित अम्बिकादत्त आरतराम, शिकारपुर।

(१४) आचार्य्यप्रभाकर—प्रकाशक, पण्डित दुर्गाप्रसाद, बी० ए०, एल-एल० बी०, मेरठ।

(१५) ऋष्यागमन—लेखक, राजकुमार रणञ्जयसिंह वर्म्मा, अमेठी।

(१६) भारतीय जैनसिद्धान्त-प्रकाशिनी संस्था (कलकत्ता) की रिपोर्ट } प्रकाशक, पण्डित श्रीलाल जैन, काव्य-तीर्थ, कलकत्ता।

(१७) गोरखा-भाषा
(१८) उपदेश-शहस्री
} प्रेषक, गोरखा एजन्सी, नेपाल।

चित्र-परिचय।

अष्टभुजा देवी।

इस संख्या के रङ्गीन चित्र का परिचय देने की आवश्यकता नहीं। कौन ऐसा हिन्दू होगा जो सिंहवाहिनी भगवती अष्टभुजा देवी को न जानता हो? यह चित्र काँगड़े की क़लम के एक पुराने चित्र की प्रतिलिपि है और बहुत सुन्दर है। चित्र-शिल्प का यह एक उत्कृष्ट नमूना है। चित्रकार बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्म्मा की कृपा से यह हमें प्राप्त हुआ है।

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the Indian Press, Allahabad.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपहार में स्त्रीशिक्षा की अत्यन्त उपयोगी पाँच पुस्तकें मुफ्त मिलती हैं।

इधर देखिये

भारत वर्ष में इससे सस्ता सरल और उपयोगी स्त्रियों के सुधार का सर्व-गुणसम्पन्न बनाने वाला तथा धर्म सम्बन्धी हिन्दी ही नहीं संसार की किसी भाषा में भी दूसरा कोई पत्र नहीं है।

स्त्रीधर्म-शिक्षक

स्त्री-शिक्षा का मासिक पत्र

सम्पादिका-श्रीमती यशोदादेवी

वार्षिक मूल्य १≡)॥ मुफ्ती उपहार सहित १।≡)

इस समय बीसों हज़ार स्त्रियां इसे पढ़ सुनकर लाभ उठा रही हैं।

श्रीमती धार्मिका विदुषी हिन्दी-हितैषिणी रानी-महारानियों द्वारा संरक्षित.

स्त्रीधर्म-शिक्षक में—धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, इतिहास, पुराण, शिल्पशिक्षा, धातृविद्या, पाकविद्या, भूगोल, विज्ञानशास्त्र, कथा, कहानी, पहेली, चित्रविद्या, बालासंगीत, शारीरिक शास्त्र और शिक्षायुक्त मनोहर उपन्यास, सन्तानपालन, ग्रहप्रबन्ध आदि स्त्री-उपयोगी स्त्रियों के ही लेख रहते हैं।

गूढ़से गूढ़ विषयभी ऐसी सरल और मनोहरभाषामें समझायेजातेहैं, जो मूर्खसे मूर्ख स्त्रियोंके भी समझमें शीघ्रही आजाते हैं। स्त्रीउपयोगी कोई विषय ऐसा नहीं जो इसमें न लिखाजाता हो।

श्रीमती यशोदादेवी कृत स्त्रीशिक्षा की अपूर्व पुस्तकें—यदि आपको स्त्रीशिक्षा की उन पुस्तकों की ज़रूरत है जिनका मिलना दुर्लभ था, जो इस समय हज़ारों रुपया ख़र्च करने पर भी दूसरी जगह नहीं मिल सकतीं, जिनके द्वारा इस समय बीसों हज़ार स्त्रियां लाभ उठा रही हैं।

१–नारीनीतिशिक्षा	।)	१३–गर्भरक्षा-विधान	॥≡)
२–महिलाहस्तभूषण	।)	१४–बालरोग चिकित्सा	॥)
३–सच्ची सहेली	।)	१५–पाकशास्त्र	१।)
४–पातिव्रत धर्ममाला	।)	१६–आदर्शगृहिणी	१)
५–पत्नी पत्रदर्पण	।)	१७–रंगकला-कपड़े रंगना	।)
६–धातृविद्या	।≡)	१८–बालास्मृतिशास्त्र	।)
७–वीरपत्नी	।)	१९–नई बहू	।)
८–जीवन रक्षा	॥।)	२०–आदर्श कुमारियां	।)
९–सन्तति सुधार	॥)	२१–स्त्रीभजन वाटिका	।)
१०–सन्तान पालन	≡)	२२–सुचरित्र संगठन	।)
११–स्त्रीरोग चिकित्सा	॥।)	२३–रत्नसंग्रह प्र० भा०	।≡)
१२–सच्चा पति-प्रेम	।)	२४–रत्नसंग्रह द्वि० भा०	।≡)

मुफ्ती उपहार

स्त्रीधर्म-शिक्षक का नये वर्ष का उपहार बिना दाम मिलता है, अब केवल १०० ग्राहकों को ही बिना दाम और मिलेगा।

मुफ्ती पांच पुस्तकें यह हैं।

१–घर की दर्जिन (कपड़े नापना काटना सीना)
२–सुघड़ रंगरेज (रंग बनाना कपड़े रंगना)
३–गुणों की पिटारी (स्त्री उपयोगी अनेक गुण संग्रह)
४–पत्नी की मनोहर चिट्ठियां (पति के लिये पत्र लिखना)
५–नारी संगीत शिक्षा (स्त्री उपयोगी भजनों की पुस्तक)

हमें एक श्रीमती ने स्त्री उपयोगी कुछ पुस्तकें मुफ़्त बांटने के लिये धन की सहायता दी है अतएव कई हज़ार पुस्तकें बाट दी गईं अब केवल एक एक सौ प्रतियां और बची हैं शीघ्र ही ग्राहक बन जाइये ऐसी उपयोगी पुस्तकें रुपये ख़र्च करने पर भी कहीं न मिलेंगी। १≡)॥ वार्षिक मूल्य स्त्री० शि० ≡)॥ डाक ख़र्च उपहारी पुस्तकों का इस प्रकार १।≡) भेजकर ग्राहक बनें या वी० पी० द्वारा मँगालें परन्तु शीघ्रता करें।

☞पताः—श्रीमती यशोदादेवी नं०(स) पोस्ट बक्स नं० ४ कर्नलगंज; इलाहाबाद।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेपकरहित असली रामायण

रामचरितमानस ।

दुबारा छप कर तैयार होगई ।

आज तक भारतवर्ष में जितनी रामायण छपीं और आज कल छप कर बिक रही हैं वे सब नक़ली हैं, क्योंकि उनमें कितने ही दोहे-चौपाइयाँ लोगों ने पीछे से लिख कर मिला दिये हैं। असली रामायण तो केवल इंडियन प्रेस की छपी रामचरित-मानस ही है। क्योंकि इसका पाठ गुसाईं जी के हाथ की लिखी पोथी से मिला कर शोधा गया है। और भी कितनी ही पुरानी लिखित पुस्तकों से पाठ मिला मिला कर इसमें से कूड़ा-करकट अलग निकाल दिया गया है। यही विशुद्ध रामायण हमने बड़े सुन्दर और मध्यम अक्षरों में, बढ़िया काग़ज़ पर, छापी है। जिल्द भी बँधी हुई है। मूल्य केवल २) दो रुपये।

अयोध्या-काण्ड ।

(सटीक)

(अनुवादक—बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०)

यों तो रामचरितमानस को हिन्दूमात्र अपना धर्मग्रन्थ समझते एवं उसका आदर करते हैं। पर उसमें से अयोध्या-काण्ड की प्रशंसा सबसे अधिक है। इसी से हमने इसे उसी असली रामचरितमानस से अलग करके मूल को बड़े टाईप में और उसका अनुवाद छोटे टाईप में छाप कर प्रकाशित किया है। अनुवाद के विषय में अधिक कहने की ज़रूरत नहीं। क्योंकि बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० को हिन्दी-संसार अच्छी तरह जानता है। पुस्तक बड़े साईज़ में है और उसके पेज तीन सौ के क़रीब हैं; तो भी सर्वसाधारण के सुभीते के लिए मूल्य बहुत ही कम केवल १।) एक रुपया चार आने।

अयोध्या काण्ड—मूल ।

इसे इलाहाबाद की यूनीवर्सिटी ने मेट्रिक्यूलेशन में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिए नियत किया है। सब के काम की चीज़ है। मूल्य ।।।) बारह आने।

❀सचित्र हिन्दी महाभारत❀

(मूल आख्यान)

५०० से अधिक पृष्ठ बड़ी साँची १९ चित्र

अनुवादक—हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी।

यह आर्यों का प्रधान ग्रन्थ है, यही आर्यों का ५००० वर्ष पहले का सच्चा इतिहास है और यही सनातन धर्म का बीज है। इसी के अध्ययन से हिन्दुओं में धर्मभाव, सत्पुरुषार्थ और समयानुसार काम करने की शक्ति जाग्रत हो उठती है। यदि भारतवर्ष में स्त्रियों को सुशिक्षित करके पातिव्रत धर्म का पुनरुद्धार करना अभीष्ट हो, यदि बालब्रह्मचारी भीष्मपितामह के पावन चरित को पढ़ कर ब्रह्मचर्य-रक्षा का महत्त्व देखना हो, यदि भगवान् कृष्णचन्द्र के उपदेशों से अपने आत्मा को पवित्र और बलिष्ठ बनाना हो, तो इस "महाभारत" ग्रंथ को मँगा कर अवश्य पढ़िए। इसकी भाषा बड़ी सरल, बड़ी ओजस्विनी और बड़ी मनोहारिणी है। प्रत्येक पढ़ी लिखी स्त्री अथवा कन्या को यह महाभारत अवश्य पढ़ना और इससे लाभ उठाना चाहिए। मूल्य केवल ३) रुपये।

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—पूर्वार्द्ध।

(हिन्दी-भाषानुवाद)

सरस्वती के समान ६०० पृष्ठ, सजिल्द—मूल्य केवल २॥)

आदि-कवि वाल्मीकि मुनि-प्रणीत रामायण का यह हिन्दी-भाषानुवाद अपने ढँग का बिल्कुल ही नया है। इसकी भाषा सरल और सरस है। इस धर्मपुस्तक के पढ़ने पढ़ाने वालों को सब तरह का ज्ञान प्राप्त होता है और आत्मा बलिष्ठ बनता है। इस पूर्वार्द्ध में आदि-काण्ड से लेकर सुन्दर-काण्ड तक—पाँच काण्डों का अनुवाद है। बाक़ी काण्ड उत्तरार्द्ध में रहेंगे जो कि जल्दी छप कर प्रकाशित होगा। अवश्य पढ़िए।

[कविरत्न श्रीअखिलानन्द-प्रणीत]

दयानन्ददिग्विजय।

महाकाव्य

हिन्दी-अनुवादसहित

जिसके देखने के लिए सहस्रों आर्य्य वर्षों से उत्कण्ठित हो रहे थे, जिसके रसास्वादन के लिए सैकड़ों संस्कृतज्ञ विद्वान् लालायित हो रहे थे, जिसकी सरल, मधुर और रसीली कविता के लिए सहस्रों आर्य्यों की वाणी चंचल हो रही थी वही महाकाव्य छप कर तैयार हो गया। यह ग्रन्थ आर्यसमाज के लिए बड़े गौरव की चीज़ है। प्रत्येक वैदिकधर्मानुरागी आर्य्य को यह ग्रन्थ लेकर अपने घर को अवश्य पवित्र करना चाहिए। यह महाकाव्य २१ सर्गों में सम्पूर्ण हुआ है। कुल मिला कर रायल आठ पेजी साँची के ६१५ + ५७ पृष्ठ हैं।

उत्तम सुनहरी जिल्द बँधी हुई इतनी भारी पोथी का मूल्य केवल ४) ही है। जल्द मँगाइए।

सम्पत्तिशास्त्र।

(लेखक—पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

आप जानते हैं जर्मन, अमरीका, इँग्लेंड और जापान आदि देश दिन दिन क्यों समृद्धिशाली होते जाते हैं? क्या आपको मालूम है कि भारतवर्ष दिन पर दिन क्यों निर्धन होता जाता है? ऐसी कौनसी चीज़ है जिसके होने से दूसरे देश मालामाल होते चले जाते हैं और जिसके अभाव से यह भारत ग़ारत हो रहा है? लीजिए, हम बताते हैं, उस चीज़ का नाम है "सम्पत्तिशास्त्र"। इसी के न जानने से आज यह भारत—भूखों मर रहा है, दिन दिन निर्धन होता चला जा रहा है। आज तक हमारे देश में, हिन्दी भाषा में, ऐसा उत्तम शास्त्र कहीं नहीं छपा था। लीजिए, इसे पढ़ कर देश की दशा सुधारिए। मूल्य सजिल्द का २॥) ढाई रुपये।

कविता-कलाप।

(सम्पादक—पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी)

इस पुस्तक में ४६ प्रकार की सचित्र कविताओं का संग्रह किया गया है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि राय देवीप्रसाद बी० ए०, बी० एल, पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्म्मा, पण्डित कामताप्रसाद गुरु, बाबू मैथिलीशरण गुप्त और पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी की ओजस्विनी लेखनी से लिखी गई कविताओं का यह अपूर्व संग्रह प्रत्येक हिन्दी-भाषाभाषी को मँगाकर पढ़ना चाहिए। इसमें कई चित्र रंगीन भी हैं। मूल्य केवल २॥) रुपये।

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शिक्षा ।

(लेखक—पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी]

बाल-बच्चोंदार मनुष्यों को चाहिए कि स्पेन्सर की शिक्षा-संबन्धिनी मीमांसा को पढ़ें और अपनी सन्तति की शिक्षा का सुप्रबन्ध कर के अपने पितृत्व धर्म्म से उद्धार हों। जो इस समय विद्यार्थि-दशा में हैं वे भी एक दिन पिता के पद पर अवश्य आरूढ़ होंगे। इससे उन्हें भी इस पुस्तक से लाभ उठाने का यत्न करना चाहिए। पुस्तक की भाषा क्लिष्ट नहीं है। पृष्ठ-संख्या ४०० से ऊपर है। काग़ज़ चिकना और मोटा है। छपाई साफ़ सुथरी है। सुवर्णाक्षरों से अलङ्कृत मनोहर जिल्द बँधी हुई है। आरम्भ में एक विस्तृत भूमिका है; हर्बर्ट स्पेन्सर का जीवन-चरित है। पुस्तक का संक्षिप्त सारांश भी है। ऐसी अनमोल पुस्तक का मूल्य सिर्फ़ २॥) ढाई रुपया रक्खा गया है।

(सचित्र)

हिन्दी-कोविदरत्नमाला ।

दो भाग

(बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० द्वारा सम्पादित)

पहले भाग में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र और महर्षि दयानन्द सरस्वती से लेकर वर्तमान काल तक के हिन्दी के नामी नामी चालीस लेखकों और सहायकों के सचित्र संक्षिप्त जीवन-चरित दिये गये हैं। दूसरे भाग में पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी तथा पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए० आदि विद्वानों के तथा कई विदुषी स्त्रियों के जीवनचरित छापे गये हैं। हिन्दी में ये पुस्तकें अपने ढँग की अकेली ही हैं। प्रत्येक भाग में ४० हाफ़टोन चित्र दिये गये हैं। मूल्य प्रत्येक भाग का १॥) डेढ़ रुपया, एक साथ दोनों भागों का मूल्य ३) तीन रुपये।

स्त्रीशिक्षा का एक सचित्र, नया और अनूठा ग्रन्थ

सीता-चरित ।

इसमें सीताजी की जीवनी तो विस्तारपूर्वक लिखी ही गई है, किन्तु साथ ही उनकी जीवनघटनाओं का महत्त्व भी विस्तार के साथ दिखाया गया है। यह पुस्तक अपने ढंग की निराली है। भारतवर्ष की प्रत्येक नारी को यह पुस्तक अवश्य मँगा कर पढ़नी चाहिए। इस पुस्तक से स्त्रियां ही नहीं पुरुष भी अनेक शिक्षायें ग्रहण कर सकते हैं। क्योंकि इसमें कोरा सीताचरित ही नहीं, पूरा रामचरित भी है। आशा है, स्त्री-शिक्षा के प्रेमी महाशय इस पुस्तक का प्रचार करके स्त्रियों को पातिव्रत धर्म की शिक्षा से अलंकृत करने में पूरा प्रयत्न करेंगे।

पृष्ठ २३५। काग़ज़ मोटा। सजिल्द। पर, मूल्य केवल १।) सवा रुपया।

प्रकृति ।

मूल्य १) एक रुपया

यह पुस्तक पण्डित रामेन्द्रसुन्दर त्रिवेदी, एम० ए० की बँगला 'प्रकृति' का हिन्दी-अनुवाद है। बँगला में इस पुस्तक की बहुत प्रतिष्ठा है। विषय वैज्ञानिक है। इस पुस्तक को पढ़ कर हिन्दी जानने वालों को अनेक विज्ञान-सम्बन्धी बातों से परिचय हो जायगा। इसमें सौर जगत् की उत्पत्ति, आकाश-तरंग, पृथिवी की आयु, मृत्यु, आर्यजाति, परमाणु, प्रलय आदि १४ विषयों पर बड़ी उत्तमता से निबन्ध लिखे गये हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विनयपत्रिका ।

[आगरानिवासी पं० रामेश्वरभट्ट-कृत सरला टीकासहित]

गोस्वामी तुलसीदासजी की कविता को सुन कर हिन्दू ही नहीं, विदेशी और विधर्मी लोग भी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हैं। प्रेम और भक्ति के वर्णन की दृष्टि से विनयपत्रिका का नंबर रामायण से भी पहले गिना जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। विनय-पत्रिका का एक एक पद भक्ति और प्रेम-रस में सरा-बोर हो रहा है। अर्थ ऐसी सरल भाषा में है कि बालक भी समझ सकते हैं। पृष्ठ ३७४। सुन्दर जिल्द। मूल्य २)

विनयपत्रिका के विषय में सर जार्ज, ए० ग्रियर्सन, के० सी० आई० ई० के पत्र की नकल हम नीचे देते हैं कि जो उन्होंने विलायत से पंडित रामेश्वर भट्ट के नाम भेजी है—

True copy of the letter received from Sir George A. Grierson, K.C.I.E., Rathfarnham, England, to the address of the Commentator of Vinaya Pattrikâ.

Dated 6th September, 1914.

DEAR SIR,

Forgive a stranger for addressing you. I write to say how highly I appreciate your excellent edition of the तुलसीदास कृत विनयपत्रिका, which I obtained from the "Indian Press" a few days ago. It is a worthy successor of your Edition of the रामचरितमानस, and really fills a want which I have long felt. The *Vinaya Pattrikâ* is a difficult work, but I think it is one of the best poems written by Tulasî Dâsa and should be studied by every devout भक्त. I have already found it of great assistance in explaining difficult passages.

May I hope that you will go on with your work, and bring out similar editions of the गीतावली and of the कवित्तावली (including the हनुमान्-बाहुक), both of which are very important. The कवित्तावली is most important, as it throws so much light on the life of the poet.

Yours faithfully,

GEORGE A. GRIERSON.

Pandit Râmeśvar Bhaṭṭ.

हिन्दी-मेघदूत ।

(पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी कृत)

कालिदास के मेघदूत का समवृत्त और समश्लोकी हिन्दी-अनुवाद, मूल श्लोक सहित—मूल्य नाम मात्र के लिए ।=)

हिन्दी-साहित्य में यह ग्रन्थ अपने ढंग का अकेला है। कविता-प्रेमियों—विशेष कर के खड़ी बोली की हिन्दी-कविता के रसिकों—को यह अवश्य देखना चाहिए। विरही यक्ष और विरहिणी यक्षपत्नी के दो सुन्दर रंगीन चित्र भी यथास्थान दिये गये हैं।

सीतावनवास ।

सुप्रसिद्ध पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर लिखित "सीतार-वनवास" नामक पुस्तक का यह हिन्दी-अनुवाद है। इस पुस्तक में श्रीरामचन्द्रजी-कृत गर्भ-वती सीताजी के परित्याग की विस्तारपूर्वक कथा बड़ी ही रोचक और करुणारस-भरी भाषा में लिखी गई है। इसे पढ़ सुन कर आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगती है और पाषाण-हृदय भी मोम की तरह द्रवीभूत हो जाता है। मूल्य ॥)

विचित्रवधूरहस्य ।

बँगला के प्रसिद्ध लेखक श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर लिखित "बऊठाकुरानीर हाट" नामक बँगला उप-न्यास का यह हिन्दी अनुवाद 'विचित्रवधूरहस्य' के नाम से तैयार हो गया। उपन्यास कितना रोचक है, इसकी घटनायें कितनी महत्त्वपूर्ण हैं, उपन्यास का भाव कैसा उत्तम है, पाठकों पर इसकी कथाओं का कैसा प्रभाव पड़ता है इत्यादि बातें उपन्यास के पाठकों को स्वयं विदित हो जायँगी। मूल्य ॥।)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर्तव्य-शिक्षा ।

अर्थात्

महात्मा चेस्टर फ़ील्ड का पुत्रोपदेश ।

(अनुवादक—पं० ऋषीश्वरनाथ भट्ट, बी० ए०, प्राज्ञ)

पृष्ठ-संख्या २७५, मूल्य १) मात्र ।

हिन्दी में ऐसी पुस्तकों की बड़ी कमी है जिनको पढ़ कर हिन्दी-भाषा-भाषी बालक शिष्टाचार के सिद्धान्तों को समझ कर नैतिक और सामाजिक विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सकें। इसी अभाव की पूर्ति के लिए हमने यह पुस्तक अँगरेज़ी से सरल हिन्दी में अनुवादित करा कर प्रकाशित की है।

जो लोग अपने बालकों को कर्तव्यशील बना कर नीति-निपुण और शिष्टाचारी बनाना चाहते हैं उनको यह पुस्तक मँगा कर अपने बालकों के हाथ में ज़रूर देनी चाहिए। बालकों को ही नहीं, यह पुस्तक हिन्दी जाननेवाले मनुष्यमात्र के काम की है।

चरित्रगठन ।

जिस कर्तव्य से मनुष्य अपने समाज में आदर्श बन सकता है उसका उल्लेख इस पुस्तक में विशेष रूप से किया गया है। उन्नति, उदारता, सुशीलता, दया, क्षमा, प्रेम, प्रतियोगिता आदि अनेक विषयों का वर्णन उदाहरण के साथ किया गया है। अतएव क्या बालक, क्या वृद्ध, क्या युवा, क्या स्त्री सभी इस पुस्तक को एक बार अवश्य एकाग्र मन से पढ़ें और इससे पूर्ण लाभ उठावें। २३२ पृष्ठ की ऐसी उपयोगी पुस्तक का मूल्य केवल ॥।) बारह आना है।

ऋद्धि ।

कोई मनुष्य ऐसा न मिलेगा जिसे ऋद्धि की चाह न हो। किन्तु इच्छा रखते हुए भी ऋद्धि-साधन का उपाय न जानने के कारण कितने ही लोग सफल-मनोरथ न होकर भाग्य को दोष देते हैं और श्रीवृद्धि के प्रयत्न से विमुख होकर कष्ट पाते हैं। जो लोग भाग्य के भरोसे रह कर दरिद्रता का दुःख झेलते हुए भी ऋद्धि-प्राप्ति के लिए कुछ उद्योग नहीं करते उनके लिए यह पुस्तक बड़े काम की है। इस पुस्तक में उदाहरण के लिए उन अनेक उद्योग-शील, निष्ठावान् कर्मवीरों की संक्षिप्त जीवनी दी गई है जो लोग स्वावलम्बन-पूर्वक व्यवसाय करके अपनी दरिद्रता दूर कर करोड़पति हो गये हैं। इतनी बढ़िया पुस्तक का मूल्य सजिल्द होने पर भी केवल १।) सवा रुपया रक्खा गया है।

जापान-दर्पण ।

(ग्रन्थकर्त्ता के हाफ़टोन चित्र सहित)

पृष्ठ ३५०, मूल्य ।॥)

जिस हिन्दूधर्मावलम्बी वीर जापान ने महाबली रूस को पछाड कर सारे संसार में आर्य्यजाति का मुख उज्ज्वल किया है, उसी के भूगोल, आचरण, शिक्षा, उत्सव, धर्म, व्यापार, राजा, प्रजा, सेना और इतिहास आदि बातों का, इस पुस्तक में, पूरा पूरा वर्णन किया गया है।

पुष्पाञ्जलि ।

(प्रथम भाग)

साहित्य खंड

पंडित श्यामविहारी मिश्र और पंडित शुकदेव-विहारी मिश्र को हिन्दी-संसार भले प्रकार जानता है। उन्हीं महाशयों के बढ़िया लेखों का यह संग्रह है। इसमें चार सौ से भी अधिक पेज हैं। तीन चित्र भी दिये गये हैं; जिल्द भी बँधी हुई है; तो भी मूल्य केवल १॥) डेढ़ रुपया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नूतनचरित्र ।

(बाबू रत्नचन्द्र बी० ए० वकील हाईकोर्ट प्रयाग लिखित)

यों तो उपन्यास-प्रेमियों ने अनेक उपन्यास देखे होंगे पर हमारा अनुमान है कि शायद उन्होंने ऐसा उत्तम उपन्यास आज तक कहीं नह देखा होगा। इसलिए हम बड़ा ज़ोर देकर कहते हैं कि इस 'नूतनचरित्र' को अवश्य पढ़िए। मूल्य १)

राजर्षि ।

मूल्य ।।।=) चौदह आना

हिन्दी-अनुरागियों को यह सुन कर विशेष हर्ष होगा कि श्रीयुत बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर के "बँगला राजर्षि" उपन्यास का अनुवाद हिन्दी में दुबारा छपकर तैयार है। इस ऐतिहासिक उपन्यास के पढ़ने से बुरी वासना चित्त से दूर होती है, प्रेम का निश्छल भाव हृदय में उमड़ पड़ता है। हिंसा-द्वेष की बातों पर घृणा होने लगती है और ऊँचे ऊँचे ख़यालात से दिमाग़ भर जाता है। इस उपन्यास को स्त्री-पुरुष दोनों निःसङ्कोच भाव से पढ़ सकते हैं और इसके महान् उद्देश्य को भली-भाँति समझ सकते हैं।

युगलांगुलीय ।

अर्थात्

दो अँगूठियाँ

बँगला के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक बंकिम बाबू के परमोत्तम और शिक्षाजनक उपन्यास का यह सरल हिन्दी-अनुवाद है। यह उपन्यास क्या स्त्री, क्या पुरुष सभी के पढ़ने और मनन करने योग्य है। मूल्य =)

धोखे की टट्टी ।

मूल्य ।=)

इस उपन्यास में एक अनाथ लड़के की नेकनीयती और नेकचलनी और एक सनाथ और धनाढ्य लड़के की बदनीयती और बदचलनी का फोटो खींचा गया है। हमारे भारतीय नवयुवक इसके पढ़ने से बहुत कुछ सुधर सकते हैं, बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

पारस्योपन्यास ।

जिन्होंने "आरब्योपन्यास" की कहानियां पढ़ी हैं उन्हें यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि पारस्योपन्यास की कहानियाँ कैसी मनोरञ्जक और अद्भुत हैं। उपन्यास-प्रेमियों को एक बार पारस्य उपन्यास भी अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य १)

वन-कुसुम ।

मूल्य ।)

इस छोटी सी पुस्तक में छः कहानियाँ छापी गई हैं। कहानियाँ बड़ी रोचक हैं। कोई कोई तो ऐसी हैं कि पढ़ते समय हँसी आये बिना नहीं रहती।

समाज ।

मिस्टर आर० सी० दत्त लिखित बँगला उपन्यास का हिन्दी-अनुवाद बहुत ही सरल भाषा में किया गया है। पुस्तक बड़े महत्त्व की है। यह सामाजिक उपन्यास सभी हिन्दी जाननेवालों के बड़े काम का है। एक बार पढ़ कर अवश्य देखिए। मूल्य ।।।)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इन्साफ़-संग्रह—पहला भाग।

पुस्तक ऐतिहासिक है। श्रीयुत मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ़ जोधपुर इसके लेखक हैं। इसमें प्राचीन राजाओं, बादशाहों और सरदारों के द्वारा किये गये अद्भुत न्यायों का संग्रह किया गया है। इसमें ८१ इन्साफ़ों का संग्रह है। एक एक इन्साफ़ में बड़ी बड़ी चतुराई और बुद्धिमत्ता भरी हुई है। पढ़ने लायक चीज़ है। मूल्य ।=)

इन्साफ़-संग्रह—दूसरा भाग।

इसमें ३७ न्यायकर्त्ताओं द्वारा किये गये ७० इन्साफ़ छापे गये हैं। इन्साफ़ पढ़ते समय तबीयत बहुत ख़ुश होती है। मूल्य केवल ।=) छः आने।

जल-चिकित्सा-(सचित्र)

[लेखक—पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी]

इसमें, डाक्टर लुई कूने के सिद्धान्तानुसार, जल से ही सब रोगों की चिकित्सा का वर्णन किया गया है। मूल्य ।)

हिन्दी-व्याकरण।

(बाबू माणिक्यचन्द्र जैनी बी० ए० कृत)

यह हिन्दी-व्याकरण अँग्रेज़ी ढङ्ग पर बनाया गया है। इसमें व्याकरण के प्रायः सब विषय ऐसी अच्छी रीति से समझाये गये हैं कि बड़ी आसानी से समझ में आ जाते हैं। मूल्य =)॥

धर्मोपाख्यान।

यों तो महाभारत के सभी पर्व मनुष्य मात्र के लिए परम उपयोगी हैं। पर उनमें शान्ति-पर्व सब से बढ़ कर है। उसमें अनेक ऐसी बातें हैं जिन्हें पढ़ सुन कर मनुष्य अपना बहुत सुधार कर सकता है। उसी शान्ति पर्व से यह छोटी सी धर्मविषयक पुस्तक 'धर्मोपाख्यान' तैयार की गई है। इसमें लिखा गया उपाख्यान बड़ा दिलचस्प है। सदाचारनिष्ठ धर्मजिज्ञासुओं को इसे ज़रूर पढ़ना चाहिए। मूल्य केवल ।) चार आने

टाम काका की कुटिया।

कुछ समय हुआ ग़ुलामी की पाशविक-प्रथा अमेरिका में ज़ोरों पर थी। इसी के पीछे उत्तरीय तथा दक्षिणीय प्रदेशों में आपस में घोर लड़ाई हुई थी; भाई ने भाई का रक्त बहाया था। तब कहीं जाकर इसका अन्त हुआ था। ग़ुलामों पर कैसे कैसे अत्याचार किये जाते थे यह जानकर पत्थर जैसा हृदय भी पिघल सकता है। उन्हीं अत्याचारों का वर्णन सहृदया मिसेज़ स्टो ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास Uncle Tom's Cabin में किया है। इसकी रोमाञ्चकारिणी घटनायें पढ़ने से नई दुनिया के सभ्य-निवासियों के हृदय का हाल अच्छी तरह मालूम हो जाता है। तारीफ़ की बात यह है कि इस उपन्यास में लिखी हुई सब घटनायें सच्ची हैं, बहुत सी तो लेखिका द्वारा आँखों देखी हुई हैं। इसके प्रकाशित होने पर प्रथम संस्करण में केवल अमेरिका में ही इसकी ३१३००० कापियाँ बिकी थीं और उसके बाद दस वर्ष में इसके कम से कम १४०० संस्करण हुए। ऐसा प्रसिद्ध लोकप्रिय और शिक्षाप्रद ऐतिहासिक सच्ची घटनाओं से भरा हुआ उपन्यास हिन्दी में एक नई चीज़ है। इसका अनुवाद बाबू चंडीचरण सेन के 'टाम काकार कुटीर' नामक बँगला ग्रंथ से बाबू महावीरप्रसाद पोद्दार ने किया है प्रारंभ में सरस्वती-संपादक पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी का लिखा एक मनोहर तथा सार-गर्भित वक्तव्य है यह सजिल्द उपन्यास बड़ी साँची के ५५९ पृष्ठों में पूर्ण हुआ है। मूल्य केवल २) है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रामाश्वमेध

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी ने लंका-विजय करने के पीछे अयोध्या में जो अश्वमेध यज्ञ किया था उसका वर्णन इस पुस्तक में बड़ी रोचक रीति से किया गया है। पुस्तक सभी के लिए उपयोगी है। इसकी कथा बड़ी ही वीररस-पूर्ण है। मूल्य ।।)

श्रीगौरांगजीवनी।

मूल्य =) दो आने

चैतन्य महाप्रभु का नाम बङ्गाल ही में नहीं किन्तु भारत के कोने कोने में फैला हुआ है। वे वैष्णव धर्म के प्रवर्त्तक और श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। इस छोटी सी पुस्तक में उन्हीं गौराङ्ग महाशय की जीवन-घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन है। पुस्तक साधारणतया मनुष्य मात्र के काम की है; किन्तु वैष्णव-धर्मावलम्बियों को तो उसे अवश्य एक बार पढ़ना चाहिए।

यवनराजवंशावली।

(लेखक—मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ़)

इस पुस्तक से आप को यह विदित हो जायगा कि भारतवर्ष में मुसलमानों का पदार्पण कब से हुआ। किस किस बादशाह ने कितने दिन तक कहाँ कहाँ राज्य किया और यह भी कि कौन बादशाह किस सन् संवत् में हुआ। बादशाहों की मुख्य मुख्य जीवन-घटनाओं का भी इसमें उल्लेख किया गया है। मूल्य =)

कालिदास की निरङ्कुशता।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी)

हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी ने "सरस्वती" पत्रिका के बारहवें भाग में "कालिदास की निरङ्कुशता" नामक जो लेख-माला प्रकाशित की थी वही पुस्तकाकार प्रकाशित कर दी गई। आशा है, सभी हिन्दी-प्रेमी इस पुस्तक को मँगा कर अवश्य देखेंगे। मूल्य केवल ।) चार आने।

विक्रमाङ्कदेवचरितचर्चा।

यह पुस्तक सरस्वती-सम्पादक पण्डित महावीर-प्रसाद द्विवेदी की लिखी हुई है। बिल्हण-कवि-रचित 'विक्रमाङ्कदेवचरित' काव्य की यह आलोचना है। इसमें विक्रमाङ्कदेव का जीवनचरित भी है और बिल्हण-कवि की कविता के नमूने भी जहाँ तहाँ दिये हुए हैं। इनके सिवा इसमें बिल्हण-कवि का भी संक्षिप्त जीवनचरित लिखा गया है। पुस्तक पढ़ने योग्य है। मूल्य =)

आघातों की प्रारम्भिक चिकित्सा।

[डाक्टर छन्नूलाल-स्मारक पुस्तकावली सं० १]

जब किसी आदमी के चोट लग जाती है और शरीर की कोई हड्डी टूट जाती है तब उसको बड़ा कष्ट होता है। जहाँ डाक्टर नहीं हो वहाँ और भी दिक्कत होती है। इन्हीं सब बातों को सोच कर, इन्हीं सब दिक्कतों के दूर करने के लिए, हमने यह पुस्तक प्रकाशित की है। इसमें सब प्रकार की चोटों की प्रारम्भिक चिकित्सा, घावों की चिकित्सा और विषचिकित्सा का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है। इस पुस्तक में आघातों के अनुसार शरीर के भिन्न भिन्न अंगों की ६५ तसवीरें भी छाप कर लगा दी हैं। पुस्तक बड़े काम की है। मूल्य ।।।)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सदुपदेश-संग्रह ।

मुंशी देवीप्रसाद साहब, मुंसिफ़, जोधपुर ने उर्दू भाषा में एक पुस्तक नसीहतनामा बनाया था। उसकी क़द्र पञ्जाब और बराड़ के विद्या-विभाग में बहुत हुई। वह कई बार छापा गया। उसी का यह हिन्दी अनुवाद है। सब देशों के ऋषि-मुनि, और महात्माओं ने अपने रचित ग्रंथों में जो उपदेश लिखे हैं उन्हां में से छांट छांट कर इस छोटी सी किताब की रचना की गई है। बिना उपदेश के मनुष्य का आत्मा पवित्र और बलिष्ठ नहीं हो सकता।

इस पुस्तक में चार अध्याय हैं। उनमें २४१ उपदेश हैं। उपदेश सब तरह के मनुष्यों के लिए हैं। उनसे सभी सज्जन, धर्मात्मा, परोपकारी और चतुर बन सकते हैं। मूल्य केवल ।) चार आने।

भारतवर्ष के धुरन्धर कवि

(लेखक, लाला कन्नोमल एम० ए०)

इस पुस्तक में आदि-कवि वाल्मीकि मुनि से लेकर माधव कवि तक संस्कृत के २६ धुरंधर कवियों का और चन्द्र कवि से आरम्भ करके राजा लक्ष्मणसिंह तक हिन्दी के २८ कवियों का संक्षिप्त वर्णन है। कौन कवि किस समय हुआ यह भी इसमें बतलाया गया है। पुस्तक बहुत काम की है। मूल्य केवल ।) चार आने।

पाकप्रकाश ।

इसमें रोटी, दाल, कढ़ी, भाजी, पकौड़ी, रायता, चटनी, अचार, मुरब्बा, पूरी, कचौरी, मिठाई, मालपुआ, आदि के बनाने की रीति लिखी गई है। मूल्य =)

प्रेम ।

यह पुस्तक कविता में है। पण्डित मन्नन द्विवेदी बी० ए० गजपुरा को हिन्दी-संसार अच्छी तरह जानता है। उन्हां ने पांच सौ पद्यों में एक प्रेम-कहानी लिख कर इसकी रचना की है। मूल्य ।) चार आने।

उपदेश-कुसुम ।

यह गुलिस्तां के आठवें बाब का हिन्दी-अनुवाद है। यह पढ़ने लायक़ और शिक्षा-दायक है। मूल्य =)

भाषा-पत्र-बोध ।

यह पुस्तक बालकों और स्त्रियों के ही उपयोगी नहीं सभी के काम की है इसमें हिन्दी में पत्रव्यवहार करने की रीतियां बड़ा उत्तम रीति से लिखी गई हैं। मूल्य -)॥

व्यवहार-पत्र-दर्पण ।

काम-काज के दस्तावेज़ और अदालती काग़ज़ों का संग्रह।

यह पुस्तक काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा की आज्ञानुसार उसी सभा के एक सभासद् द्वारा लिखी गई है। इसमें एक प्रसिद्ध वकील की सलाह से अदालत के सैकड़ों काम-काज के काग़ज़ों के नमूने छापे गये हैं। इसकी भाषा भी वही रक्खी गई है जो अदालतों में लिखी पढ़ी जाती है। इसकी सहायता से लोग अदालत के ज़रूरी कामों को नागरी में बड़ी सुगमता से कर सकते हैं। क़ीमत ॥)

आरोग्य-विधान ।

नीरोग रहने के सुगम उपायों का वर्णन। मूल्य =)॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुमारसम्भवसार ।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

कालिदास के "कुमार-सम्भव" काव्य का यह मनोहर सार दुबारा छप कर तैयार हो गया । प्रत्येक हिन्दी-कविता-प्रेमी को द्विवेदीजी की यह मनोहारिणी कविता पढ़ कर आनन्द प्राप्त करना चाहिए । मूल्य केवल ।) चार आने ।

संक्षिप्तं वाल्मीकीय-रामायणम् ।

(सम्पादक श्री डाक्टर सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर)

आदि-कवि वाल्मीकिमुनिप्रणीत वाल्मीकीय रामायण संस्कृत में बहुत बडी पुस्तक है । सर्व साधारण उससे लाभ नहीं उठा सकते । इसी से सम्पादक महाशय ने असली वाल्मीकीय को संक्षिप्त किया है । तो भी पुस्तक का सिलसिला टूटने नहीं पाया है । यही इसमें बुद्धिमत्ता की गई है । विद्यार्थियों के बड़े काम की है । सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल १) रुपया ।

योगवासिष्ठ-सार ।

(वैराग्य और मुमुक्षु-व्यवहार प्रकरण)

योगवासिष्ठ ग्रन्थ की महिमा हिन्दू-मात्र से छिपी नहीं है । इस ग्रन्थ में श्रीरामचन्द्रजी और गुरु वसिष्ठजी का उपदेशमय संवाद लिखा हुआ है । जो लोग संस्कृत-भाषा में इस भारी ग्रन्थ को नहीं पढ़ सकते उनके लिए हमने योगवासिष्ठ का सार-रूप यह ग्रन्थ हिन्दी में प्रकाशित किया है । इससे धर्म, ज्ञान और वैराग्यविषयक उत्तम शिक्षायें मिलती हैं । मूल्य ॥=)

भारतवर्ष में पश्चिमीय शिक्षा ।

श्रीमान् पण्डित मनोहरलाल ज़ुतशी, एम० ए० उर्दू और अँगरेज़ी के प्रसिद्ध लेखक हैं । आपने "एज्युकेशन इन ब्रिटिश इंडिया" नामक एक पुस्तक अँगरेज़ी में लिखी है और उसे इंडियन प्रेस, प्रयाग ने छापकर प्रकाशित किया है । पुस्तक बड़ी खोज के साथ लिखी गई है । उक्त पुस्तक का सारांश हिन्दी और उर्दू में भी छप गया है । आशा है हिन्दी और उर्दू के पाठक इस उपयोगी पुस्तक को मँगा कर अवश्य लाभ उठावेंगे । मूल्य इस प्रकार है:—

एज्युकेशन इन ब्रिटिश इंडिया (अँगरेज़ी में) २॥)
भारतवर्ष में पश्चिमीय शिक्षा (हिन्दी में) ।=)
हिन्द में मग़रबी तालीम (उर्दू में) ।=)

मानस-दर्पण ।

(लेखक—श्री० पं० चन्द्रमौलि शुक्ल, एम० ए०)

इस पुस्तक को हिन्दी-साहित्य का अलङ्कारग्रन्थ समझना चाहिए । इसमें अलङ्कारों आदि के लक्षण संस्कृत-साहित्य से और उदाहरण रामचरितमानस से दिये गये हैं । प्रत्येक हिन्दी-पाठक को यह पुस्तक अवश्य ही पढ़नी चाहिए । मूल्य ।-)

संक्षिप्त इतिहासमाला ।

हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पण्डित श्यामविहारी मिश्र, एम० ए० और पण्डित शुकदेवविहारी मिश्र, बी० ए० के सम्पादकत्व में पृथ्वी के सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध देशों के हिन्दी में संक्षिप्त इतिहास तैयार होने का प्रबन्ध किया गया है । यह समस्त इतिहासमाला कोई २०,२२ संख्याओं में पूर्ण होगा । अब तक ये ६ पुस्तकें छप चुकी हैं:—

१—जर्मनी का इतिहास	...	।=)
२—फ्रांस का इतिहास	...	।=)
३—रूस का इतिहास	...	।=)
४—इँगलेंड का इतिहास	...	॥=)
५—जापान का इतिहास	...	॥)
६—स्पेन का इतिहास	...	।=)

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बालसखा-पुस्तकमाला ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग से "बालसखा-पुस्तकमाला" नामक सीरीज़ में जितनी किताबें आज तक निकली हैं वे सब हिन्दी-पाठकों के लिए, विशेष कर बालक-बालिकाओं और स्त्रियों के लिए, परमोपयोगी प्रमाणित हो चुकी हैं। इस 'माला' में अब तक इतनी पुस्तकें निकल चुकी हैं।

बालभारत—पहला भाग ।

१—इसमें महाभारत की संक्षेप से कुल कथा ऐसी सरल हिन्दी भाषा में लिखी गई है कि बालक और स्त्रियाँ तक पढ़कर समझ सकती हैं। यह पाण्डवों का चरित बालकों को अवश्य पढ़ाना चाहिए। मूल्य ॥) आठ आने।

बालभारत—दूसरा भाग ।

२—इसमें महाभारत से छाँट कर बीसियों ऐसी कथायें लिखी गई हैं कि जिनको पढ़ कर बालक अच्छी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। हर कथा के अन्त में कथानुरूप शिक्षा भी दी गई है। मूल्य ॥)

बालरामायण—सातों काण्ड ।

३—इसमें रामायण की कुल कथा बड़ी सीधी भाषा में लिखी गई है। इसकी भाषा की सरलता में इससे अधिक और क्या प्रमाण दें कि गवर्नमेंट ने इस पुस्तक को सिविलियन लोगों के पढ़ने के लिए नियत कर दिया है। मूल्य ॥)

बालमनुस्मृति ।

४—'मनुस्मृति' में से उत्तम उत्तम श्लोकों को छाँट छाँट कर उनका सरल हिन्दी में अनुवाद लिखा गया है। मूल्य ।)

बालनीतिमाला ।

५—शुक्रनीति, विदुरनीति, चाणक्यनीति और कणिकनीति का संक्षिप्त हिन्दी-अनुवाद है। इसकी भाषा बालकों और स्त्रियों तक के समझने लायक़ है। मूल्य ॥)

बालभागवत—पहला भाग ।

६—इसमें 'श्रीमद्भागवत' की कथाओं का सार लिखा गया है। इसकी कथायें बड़ी रोचक, बड़ी शिक्षा-दायक और भक्ति-रस से भरी हुई हैं। मूल्य ॥) आने।

बालभागवत—दूसरा भाग ।

अर्थात्

श्रीकृष्णलीला

७—श्रीकृष्ण के प्रेमियों को यह बालभागवत का दूसरा भाग ज़रूर पढ़ना चाहिए। इसमें, श्रीमद्भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण भगवान् की अनेक लीलाओं की कथायें लिखी गई हैं। मूल्य केवल ॥)

बालगीता ।

८—श्रीकृष्णचन्द्र महाराज के मुखारविन्द से निकले हुए सदुपदेश को कौन हिन्दू न पढ़ना चाहेगा? अपने आत्मा को पवित्र और बलिष्ठ बनाने के लिए यह "बालगीता" ज़रूर पढ़नी चाहिए। इसमें पूरी गीता का सार बड़ी सरल भाषा में लिखा गया है। मूल्य ॥)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बालोपदेश ।

९—यह पुस्तक बालकों को ही नहीं युवा, वृद्ध, वनिता सभी को उपयोगी तथा चतुर, धर्मात्मा और शीलसम्पन्न बनाने वाली है। राजा भर्तृहरि के विमल अन्तःकरण में जब संसार से वैराग्य उत्पन्न हुआ था तब उन्होंने एकदम भरा पूरा राज-पाट छोड़ कर संन्यास ले लिया था । उस परमानन्दमयी अवस्था में उन्होंने वैराग्य और नीति-सम्बन्धी दो शतक बनाये थे। इस 'बालोपदेश' में उन्हीं भर्तृहरि-कृत नीतिशतक का पूरा और वैराग्यशतक का संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद छापा गया है। यह पुस्तक स्कूलों में बालकों के पढ़ने के लिए बड़ी उपयोगी है। मूल्य ।)

बालआरब्योपन्यास (सचित्र) चारों भाग।

१०-१३—दिलचस्प क़िस्से कहानियों के उपन्यासों में अरबियन नाइट्स का नम्बर सबसे पहला है। इसमें से कुछ अयोग्य कहानियों को निकाल कर, यह विशुद्ध संस्करण निकाला गया है, इस लिए, अब, यह किताब क्या स्त्री, क्या पुरुष सभी के पढ़ने लायक़ है। इसके पढ़ने से हिन्दी-भाषा का प्रचार होगा, मनोरञ्जन होगा, घर बैठे दुनिया की सैर होगी, बुद्धि और विचार-शक्ति बढ़ेगी, चतुराई सीखने में आवेगी, साहस और हिम्मत बढ़ेगी। मूल्य प्रत्येक भाग का ॥)

बालपंचतंत्र ।

१४—इसके पांचों तंत्रों में बड़ी मनोरञ्जक कहानियों के द्वारा सरल रीति पर नीति की शिक्षा दी गई है। बालक-बालिकायें इसकी मनोरंजक कहानियों को बड़े चाव से पढ़ कर नीति की शिक्षा ग्रहण कर सकती हैं। मूल्य केवल ॥) आठ आने।

बालहितोपदेश ।

१५—इस पुस्तक के पढ़ने से बालकों की बुद्धि बढ़ती है, नीति की शिक्षा मिलती है, मित्रता के लाभों का ज्ञान होता है और शत्रुओं के पंजे में न फँसने और फँस जाने पर उससे निकलने के उपायों और कर्त्तव्यों का बोध हो जाता है। यह पुस्तक, पुरुष हो या स्त्री, बालक हो या बूढ़ा, सभी के काम की है। मूल्य आठ आने।

बालहिन्दीव्याकरण ।

१६—यदि आप हिन्दी-व्याकरण के गूढ़ विषयों को सरल और सुगम रीति से जानना चाहते हैं, यदि आप हिन्दी शुद्ध रूप से लिखना और बोलना जानना चाहते हैं, तो "बालहिन्दीव्याकरण" पुस्तक मँगा कर पढ़िए और अपने बाल-बच्चों को पढ़ाइए। स्कूलों में लड़कों के पढ़ाने के लिए यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है। मूल्य ।) चार आने।

बालविष्णुपुराण ।

१७—जो लोग संस्कृत भाषा में विष्णुपुराण की कथाओं का आनन्द नहीं लूट सकते, उन्हें 'बाल-विष्णु-पुराण' पढ़ना चाहिए। इस पुराण में कलियुगी भविष्य राजाओं की वंशावली का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है। इस पुस्तक को विष्णुपुराण का सार समझिए। मूल्य ।)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बाल-स्वास्थ्य-रक्षा ।

१८—प्रत्येक गृहस्थ को इसकी एक एक कापी अपने घर में रखनी चाहिए। बालकों को तो आरम्भ से ही इस पुस्तक को पढ़ कर स्वास्थ्य-सुधार के उपायों का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। इसमें बतलाया गया है कि मनुष्य किस प्रकार रह कर, किस प्रकार का भोजन करके, नीरोग रह सकता है। इसमें प्रति दिन के बर्ताव में आनेवाली खाने की चीज़ों के गुणदोष भी अच्छी तरह बताये गये हैं। मूल्य केवल ॥) आठ आना

बालगीतावलि ।

१९—इसमें महाभारत में से ९ गीताओं का संग्रह किया गया है। उन गीताओं में ऐसी उत्तम उत्तम शिक्षायें हैं कि जिनके अनुसार बर्ताव करने से मनुष्य का परम कल्याण हो सकता है। हमें पूरी आशा है कि हिन्दी-प्रेमी इस को पढ़ कर उत्तम शिक्षा का लाभ करेंगे। मूल्य ॥) आठ आने।

बालनिबन्धमाला ।

२०—इसमें कोई ३५ शिक्षादायक विषयों पर बड़ी सुन्दर भाषा में, निबन्ध लिखे गये हैं। बालकों के लिए तो यह पुस्तक उत्तम गुरु का काम देगी। मूल्य ।=)

बालस्मृतिमाला ।

२१—हमने १८ स्मृतियों का सार-संग्रह करा कर यह "बालस्मृतिमाला" प्रकाशित की है। आशा है, सनातनधर्म के प्रेमी अपने अपने बालकों के हाथ में यह धर्मशास्त्र की पुस्तक देकर उनको धर्मिष्ठ बनाने का उद्योग करेंगे। मूल्य केवल ॥) आठ आने।

बालपुराण ।

२२—सर्वसाधारण के सुभीते के लिए हमने अठारह महापुराणों का साररूप 'बालपुराण' प्रकाशित किया है। इसमें अठारहों पुराणों की संक्षिप्त कथासूची दी गई है और यह भी बतलाया गया है कि किस पुराण में कितने श्लोक और कितने अध्याय आदि हैं। पुस्तक बड़े काम की है। मूल्य केवल ॥)

बालभोजप्रबन्ध ।

२३—राजा भोज का विद्याप्रेम किसी से छिपा नहीं है। संस्कृत भाषा के "भोजप्रबन्ध" नामक ग्रन्थ में राजा भोज के संस्कृत-विद्याप्रेम-सम्बन्धी अनेक आख्यान लिखे हुए हैं। वे बड़े मनोरञ्जक और शिक्षादायक हैं। उसी भोजप्रबन्ध का साररूप यह "बाल-भोजप्रबन्ध" छपकर तैयार हो गया। सभी हिन्दी-प्रेमियों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। मूल्य केवल ॥) आठ आने।

बाल-कालिदास ।

या

कालिदास की कहावतें

२४—इस पुस्तक में महाकवि कालिदास के सब ग्रन्थों से उनकी चुनी हुई उत्तम कहावतों का संग्रह किया गया है। ऊपर श्लोक दे कर नीचे उनका अर्थ और भावार्थ हिन्दी में किया गया है। कालिदास की कहावतें बड़ी अनमोल हैं। उनमें सामाजिक, नैतिक और प्राकृतिक 'सत्यों' का बड़ी ख़ूबी के साथ वर्णन किया गया है। इस पुस्तक की उक्तियाँ बच्चों को याद करा देने से वे चतुर बनेंगे और समय समय पर उन्हें वे काम देती रहेंगी। मूल्य केवल ।) चार आने है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुखमार्ग ।

इस पुस्तक का जैसा नाम है वैसा ही गुण भी है। इस पुस्तक के पढ़ते ही सुख का मार्ग दिखाई देने लगता है। जो लोग दुखी हैं, सुख की खोज में दिन रात सिर पटकते रहते हैं उनको यह पुस्तक ज़रूर पढ़नी चाहिए। मूल्य केवल ।)

नाट्य-शास्त्र ।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

मूल्य ।) चार आने

नाटक से सम्बन्ध रखनेवाली—रूपक, उपरूपक, पात्र-कल्पना, भाषा, रचनाचातुर्य, वृत्तियाँ, अलङ्कार, लक्षण, जवनिका, परदे, वेशभूषा, दृश्य काव्य का कालविभाग आदि—अनेक बातों का वर्णन इस पुस्तक में किया गया है।

बहराम-बहरोज़ ।

यह पुस्तक मुंशी देवीप्रसादजी, मुंसिफ़ की लिखी हुई है। उन्हों ने इसे तवारीख़ रोज़ेतुलसफ़ा से उर्दू भाषा में लिखा था, उसी का यह हिन्दी-अनुवाद है। उर्दू पुस्तक को यू० पी० के विद्याविभाग ने पसन्द किया, इसलिए वह कई बार छापी गई। अनेक विद्याविभागों में उसका प्रचार रहा। बहराम और बहरोज़ दो भाई थे। उन्हों का इसमें वर्णन क़िस्से-रूप में है। तेरह क़िस्सों में वह पूरी हुई है। पुस्तक बड़ी मनोरंजक और शिक्षाप्रद है। लडकों के बड़े काम की है। मूल्य =) तीन आने।

खेलतमाशा ।

यह भी हिन्दी पढ़नेवाले बालकों के लिए बड़े मज़े की किताब है। इसमें सुन्दर सुन्दर तसवीरों के साथ साथ गद्य और पद्य भाषा लिखी गई है। इसे बालक बड़े चाव से पढ़ कर याद कर लेते हैं। पढ़ने का पढ़ना और खेल का खेल है। मूल्य =)

सचित्र

देवनागर-वर्णमाला

आठ रङ्गों में छपी हुई—मूल्य केवल ।=)

ऐसी उत्तम किताब हिन्दी में आज तक कहीं नहीं छपी। इसमें प्रायः प्रत्येक अक्षर पर एक एक मनोहर चित्र है। देवनागरी सीखने के लिए बच्चों के बडे काम की किताब है। बच्चा कैसा भी खिलाड़ी हो पर इस किताब को पाते ही वह खेल भूल कर किताब के सौन्दर्य्य के देखने में लग जायगा और साथ ही अक्षर भी सीखेगा। खेल का खेल और पढ़ने का पढ़ना है।

हिन्दी का खिलौना ।

इस पुस्तक को लेकर बालक ख़ुशी के मारे कूदने लगते हैं और पढ़ने का तो इतना शौक़ हो जाता है कि घर के आदमी मना करते हैं पर वे किताब हाथ से रखते ही नहीं। मूल्य ।-)

बालविनोद ।

प्रथम भाग-) द्वितीय भाग -)॥ तृतीय भाग =) चौथा भाग ।=) पाँचवाँ भाग ।≡) ये पुस्तकें लड़के लड़कियों के लिए प्रारम्भ से शिक्षा शुरू करने के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। इसमें से पहले तीनों भागों में रंगीन तसवीरें भी दी गई हैं। इन पांचों भागों में सदुपदेशपूर्ण अनेक कवितायें भी हैं। बंगाल की टैक्स्ट बुक कमेटी ने इनमें से पहले तीनों भागों को अपने स्कूलों में जारी कर दिया है।

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पतिव्रता ।

आजकल स्त्री-पाठ्य पुस्तकों की अधिक आवश्यकता देख कर हमने 'पतिव्रता' नाम की एक पुस्तक छाप कर प्रकाशित की है। इस पुस्तक में—सती, सुनीति, गान्धारी, सावित्री, दमयन्ती और शकुन्तला—इन छः पतिव्रताओं का चरित लिखा गया है। इसकी भाषा बड़ी सरल और सरस है। इसकी वर्णन-शैली बड़ी ही मनोहर है। भारत की प्रत्येक हिन्दी पढ़ी-लिखी नारी को यह पतिव्रता अवश्य पढ़नी चाहिए। मूल्य ॥।)

पार्वती और यशोदा ।

इस उपन्यास में स्त्रियों के लिए अनेक शिक्षायें दी गई हैं। इसमें दो प्रकार के स्त्री-स्वभावों का ऐसा अच्छा फ़ोटो खींचा गया है कि समझते ही बनता है। 'सरस्वती' के प्रसिद्ध कवि पण्डित कामताप्रसाद गुरु ने ऐसा शिक्षादायक उपन्यास लिख कर हिन्दी पढ़ी लिखी स्त्रियों का बहुत उपकार किया है। हर एक स्त्री को यह उपन्यास अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य ।=)

हिन्दी-व्याकरण ।

(बाबू गंगाप्रसाद एम० ए० कृत)

यह भी नये ढंग का व्याकरण है। इसमें भी व्याकरण के सब विषय अँग्रेज़ी ढंग पर लिखे गये हैं। उदाहरण देकर हर एक विषय को ऐसी अच्छी तरह से समझाया है कि बालकों की समझ में बहुत जल्द आ जाता है। मूल्य =)

सटीक

रामचरितमानस

(क्षेपक-रहित)

(टीकाकार श्रीयुत बाबू श्यामसुन्दरदास बी. ए. ।)

हिन्दी-संसार में ऐसा कौन है जो प्रसिद्ध कर्मवीर बाबू श्यामसुन्दरदासजी के नाम से अपरिचित हो। यह टीका इन्हीं बाबू साहब की की हुई है। यह वही तुलसीकृत रामचरितमानस है जिसका पाठ काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के पाँच सभासदों ने मिल कर शोधा था! ऐसी रामायण दूसरी जगह न मिलेगी। मूल चौपाइयों के अक्षर बड़े और सुस्पष्ट हैं। यदि आप तुलसीदासजी की वास्तविक रामायण का रसास्वादन करना चाहते हैं तो इसे अवश्य ख़रीदिए। बड़ी साँची के ११०४ पृष्ठों में ग्रन्थ समाप्त हुआ है। इसके सिवा ८० पेज में भूमिका आदि लिखी गई है। ग्रन्थ इतना बड़ा होने पर भी मूल्य केवल ४) चार रुपया है।

संगीत-सुदर्शन ।

आज कल के अवैज्ञानिक गाने—ग़ज़ल, ठप्पे—आदि के कारण शास्त्रीय तथा वैज्ञानिक संगीत का बिलकुल लोप होगया है। शास्त्रीय गान में कितनी शक्ति तथा चमत्कार है यह बतलाने की ज़रूरत नहीं। यह पुस्तक शास्त्रीय रीति पर संगीत की शिक्षा देने के लिए रची गई है। इस में सब रागरागिनियों के सुर, बोल, मीड आदि ऐसी सरलता से समझाये गये हैं कि हर कोई समझ सकता है। इसमें रागाध्याय, तालाध्याय, नृत्याध्याय आदि देकर मानों प्राचीन संगीत शास्त्र का निचोड़ ही रख दिया गया है। प्रसिद्ध गवैये और उनके चमत्कारों का भी बड़ा मनोरंजक वर्णन दिया गया है। इस पुस्तक में ९ चित्र हैं। पृष्ठ-संख्या २८० से ऊपर है; परन्तु मूल्य केवल १) ही है। प्रसिद्ध तानसेन वंश के शिष्य पं० सुदर्शनाचार्य शास्त्री ने इसकी रचना की है। आशा है इस पुस्तक का घर घर प्रचार होगा।

मिलने का पता—मैनेजर इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चारण ।

(एक पद्यात्मक कहानी)

जो लोग अँगरेज़ी साहित्य से परिचित हैं वे जानते हैं कि Romantic poetry रोमेन्टिक कविता का उस भाषा में कितना प्रचार और आदर है। हिन्दी में ऐसी कथाओं का अभाव ही है। प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी साहित्य में एक नई पुस्तक है। इसका ढँग नया है और कथा बड़ी ही रोचक और सरल है। प्राकृतिक दृश्यों का मनोरंजक वर्णन, प्राचीन राजपूत-गौरव का निदर्शन तथा चारण की आत्म-जीवनी पढ़ने ही योग्य है। प्रेम के उद्गार, कृतज्ञता तथा स्वाभिमान से डूबे हुए पद्य पढ़ कर चित्त प्रसन्न हो जाता है। प्रत्येक हिन्दू को यह पुस्तक देखनी चाहिए। क्योंकि इसमें सबके काम की बातें और उनके पूर्वजों की अतीत काल की वीरता का वर्णन है। मूल्य केवल ≡)

बाला-बोधिनी ।

(पाँच भाग)

लड़कियों के पढ़ने के लिए ऐसी पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता थी जिनमें भाषाशिक्षा के साथही साथ लाभदायक उपयोगी उपदेशों के पाठ हों और उनमें ऐसी शिक्षा भरी हों जिनकी, वर्तमान काल में, लड़कियों के लिए अत्यन्त आवश्यकता है। हमारी बालाबोधिनी इन्हीं आवश्यकताओं के पूर्ण करने के लिए प्रकाशित हुई हैं। क्या देशी और क्या सरकारी सभी पुत्री-पाठशालाओं की पाठ्य पुस्तकों में बालाबोधिनी को नियत करना चाहिए। इन पुस्तकों के कवर-पेज ऐसे सुन्दर रङ्गीन छापे गये हैं कि देखते ही बनता है। मूल्य पाँचों भागों का १।) और प्रत्येक भाग का क्रमशः =), ≡), ।), ।-), ।=), है।

बालापत्रबोधिनी ।

इसमें पत्र लिखने के नियम आदि बताने के अतिरिक्त नमूने के लिए पत्र भी ऐसे ऐसे छपाये गये हैं कि जिनसे लड़कियों को पत्र आदि लिखने का तो ज्ञान होगाही, किन्तु अनेक उपयोगी शिक्षायें भी प्राप्त हो जायँगी। मूल्य ।=)

बाला-पत्र-कौमुदी ।

मूल्य =) आने

इस छोटी सी पुस्तक में लड़कियों के योग्य अनेक छोटे छोटे पत्र लिखने के नियम और पत्रों के नमूने दिये गये हैं। कन्यापाठशालाओं में पढ़ने वाली कन्याओं के लिए पुस्तक बड़े काम की है।

सौभाग्यवती ।

पढ़ी लिखी स्त्रियों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। इसके पढ़ने से स्त्रियाँ बहुत कुछ उपदेश ग्रहण कर सकती हैं। मूल्य =)॥

शेख़चिल्ली की कहानियाँ ।

इस पुस्तक की अँगरेज़ी में हज़ारों कापियाँ बिक गईं, बँगला में भी ख़ूब बिक रही हैं। अब हिन्दी में भी यह किताब छप कर तैयार हो गई। इन कहानियों की प्रशंसा में इतना ही कह देना बहुत होगा कि इन्हें शेख़चिल्ली ने लिखा है। मूल्य ॥)

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भारतीय विदुषी ।

इस पुस्तक में भारत की कोई ४० प्राचीन विदुषी देवियों के संक्षिप्त जीवन-चरित लिखे गये हैं। स्त्रियों को तो यह पुस्तक पढ़नी ही चाहिए, क्योंकि इसमें स्त्री-शिक्षा की अनेक उपयोगी बातें ऐसी लिखी गई हैं कि जिन के पढ़ने से स्त्रियों के हृदय में विद्यानुराग का बीज अङ्कुरित हो जाता है, किन्तु पुरुषों को भी इस पुस्तक में कितनी ही नई बातें मालूम होंगी। मूल्य ।=)

तारा ।

यह नया उपन्यास है। बँगला में "शैशवसहचरी" नामक एक उपन्यास है। लेखक ने उसी के अनुकरण पर इसे लिखा है। यह उपन्यास मनोरञ्जक, शिक्षा-प्रद और सामाजिक है। यह बढ़िया टाईप में छापा गया है। २५० पेज की पोथी का मूल्य केवल ॥।=)

हिन्दीभाषा की उत्पत्ति ।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी)

यह पुस्तक हर एक हिन्दी जाननेवाले को पढ़नी चाहिए। इसके पढ़ने से मालूम होगा कि हिन्दी भाषा की उत्पत्ति कहाँ से है। पुस्तक बड़ी खोज के साथ लिखी गई है। हिन्दी में ऐसी पुस्तक, अभी तक कहीं नहीं छपी। इसमें और भी कितनी ही हिन्दुस्तानी भाषाओं का विचार किया गया है। मूल्य ।)

शकुन्तला नाटक ।

कविशिरोमणि कालिदास के शकुन्तला नाटक को कौन नहीं जानता? संस्कृत में जैसा बढ़िया यह नाटक हुआ है वैसा ही मनोहर यह हिन्दी में लिखा गया है। कारण यह कि इसे हिन्दी के सच्चे कालिदास राजा लक्ष्मणसिंह ने अनुवादित किया है। मूल्य १)

हिन्दी-शेक्सपियर ।

छः भाग

शेक्सपियर एक ऐसा प्रतिभाशाली कवि हुआ है जिस पर योरप देश के रहने वाली गौराङ्ग जाति को ही नहीं किन्तु संसार भर के मनुष्य मात्र को अभिमान करना चाहिए। उसी जगत्प्रतिष्ठित कवि के नाटकों पर से ये कहानियाँ बिलकुल नये ढँग से लिखी गई हैं। हिन्दी सरल और सरस है तथा सब के समझने योग्य है। यह पुस्तक छः भागों में विभाजित है। प्रत्येक भाग का मूल्य ॥) आने है और छः हों भाग एक साथ लेने पर ३) तीन रुपया।

कादम्बरी ।

यह कविवर बाणभट्ट के सर्वोत्तम संस्कृत-उपन्यास का अत्युत्तम हिन्दी-अनुवाद, प्रसिद्ध हिन्दी-लेखक स्वर्गवासी बाबू गदाधरसिंह वर्मा ने किया है। कलकत्ता की यूनिवर्सिटी ने इसको एफ० ए० क्लास के कोर्स में सम्मिलित कर लिया है। दाम ॥), संक्षिप्त संस्कृत में ॥।)

गीताञ्जलि ।

मूल्य १) रुपया।

डाक्टर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बनाई हुई "गीताञ्जलि" नामक अँगरेज़ी पुस्तक का संसार में बड़ा भारी आदर है; उस पुस्तक की अनेक कवितायें बँगला गीताञ्जलि में तथा और भी कई बँगला की पुस्तकों में छपी हुई हैं। उन्हीं कविताओं को इकट्ठा करके हमने हिन्दी-अक्षरों में 'गीताञ्जलि' छपाया है। जो महाशय हिन्दी जानते हुए वंग-भाषा-माधुर्य का रसास्वादन करना चाहते हैं उनके लिए यह बड़े काम की पुस्तक है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विनोद-वैचित्र्य ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग से निकलने वाली इतिहास-माला के उप-सम्पादक पण्डित सोमेश्वरदत्त शुक्ल, बी० ए० को हिन्दी-भाषा-भाषी भले प्रकार जानते हैं। यह पुस्तक उक्त पण्डित जी की लिखी हुई है। २१ विषयों पर बढ़िया बढ़िया लेख लिख कर उन्होंने इसे २४४ पेज में सजिल्द तैयार किया है। मूल्य १) एक रुपया।

सचित्र

अद्भुत कथा ।

यह पुस्तक बाबू श्यामाचरण दे-प्रणीत बँगला के 'वङ्गेरउपकथा' नामक पुस्तक का अनुवाद है। इसमें ११ कहानियाँ हैं। बालक-बालिका एवं सभी मनुष्य स्वभावतः क़िस्से-कहानी सुनने और पढ़ने के अनुरागी होते हैं। इस पुस्तक में ऐसी विचित्र विचित्र हृदया-कर्षक और मनोरञ्जक कहानियाँ हैं जिन्हें सब लोग बड़े चाव से सुनें और पढ़ेंगे। साथ ही साथ उन्हें अनेक तरह की शिक्षा भी मिलेगी। इसमें कहानियों से सम्बन्ध रखने वाले पाँच चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य ॥।) बारह आने।

रॉबिन्सन क्रूसो ।

क्रूसो की कहानी बड़ी मनोरञ्जक, बड़ी चित्ता-कर्षक और शिक्षादायक है। नवयुवकों के लिए तो यह पुस्तक बड़ी ही उपयोगी है। क्रूसो के अदम्य उत्साह, असीम साहस, अद्भुत पराक्रम, घोर परिश्रम और विकट वीरता के वर्णन को पढ़ कर पाठक के हृदय पर बड़ा विचित्र प्रभाव पड़ता है। कूपमण्डूक की तरह घर पर ही पड़े पड़े सड़ने वाले आलसियों को इसे अवश्य पढ़ कर अपना सुधार करना चाहिए। मूल्य १।)

कविता-कुसुम-माला ।

(पांडेय लोचनप्रसाद द्वारा संग्रहीत।)

इस पुस्तक में विविध विषयों से सम्बन्ध रखने वाली भिन्न भिन्न कवियों की रची हुई अत्यन्त मनो-हारिणी रसवती और चमत्कारिणी १०९ कविताओं का संग्रह है। मूल्य ॥=) दस आने।

तरलतरंग ।

पं० सोमेश्वरदत्त शुक्ल, बी० ए० की लिखी हुई यह 'तरलतरंग' पुस्तक संग्रह-रूप में है। इसमें—अपूर्ण शिक्षक का अधम लक्षण—एक बढ़िया उप-न्यास है। और—सावित्री-सत्यवान नाटक तथा चन्द्रहास नाटक—ये दो नाटक हैं। यह पुस्तक विशेष मनोरंजन ही की सामग्री नहीं किन्तु शिक्षाप्रद और उपदेशप्रद भी है। मूल्य ॥=) दस आने।

नवीन संशोधित तथा परिवर्धित द्वितीय संस्करण

क्षय-रोग ।

(अनुवादक—पं० बालकृष्ण शर्म्मा)

भारतसन्तानो! यदि इस रोग-राक्षस से अपनी तथा अपने प्यारों की रक्षा चाहते हो तो यह पुस्तक पढ़ो। यह तुम्हें बतावेगी कि सभ्य संसार ने किन सरल युक्तियों द्वारा ऐसे भयंकर रोगों पर विजय प्राप्त की है। यह हताशों में आशा का संचार करती है। संसार भर की मुख्य भाषाओं ने इसे अपनाया है। इसकी भाषा बड़ी सरल है। कोई १५० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल ।-) पाँच आने।

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सरस्वती के नियम।

१—सरस्वती प्रतिमास प्रकाशित होती है।

२—डाकव्यय सहित इसका वार्षिक मूल्य ४) है। इसका वर्ष जनवरी से दिसम्बर तक वा जुलाई से जून तक समझा जाता है। बीच में ग्राहक होने वालों को पूरे वर्ष की संख्यायें दी जाती हैं। प्रति संख्या का मूल्य ।=) है। बिना अग्रिम मूल्य के पत्रिका नहीं भेजी जाती। पुरानी प्रतियाँ सब नहीं मिलतीं। जो मिलती भी हैं उनका मूल्य ॥) प्रति से कम नहीं लिया जाता।

३—अपना नाम और पूरा पता साफ़ साफ़ लिख कर भेजना चाहिए। जिसमें पत्रिका के पहुचने में गड़बड़ न हो।

४—जिन सज्जनों को किसी मास की सरस्वती न मिले उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछना चाहिए। अगर पता न लगे तो डाकघर से जो उत्तर आवे उसे हमारे पास—जिस महीने की संख्या न मिली हो उसके अगले महीने की १५ तारीख़ तक भेजें। उनको दूसरी संख्या भेज दी जावेगी। लेकिन इस अवधि के बाद जिनके पत्र आवेंगे उनको दूसरी संख्या तभी भेजी जावेगी जब वे डाकमहसूल सहित एक संख्या का मूल्य ।=)॥ पत्र के साथ भेजेंगे। जिन पत्रों के साथ डाकघर का उत्तर न होगा उन पर ध्यान न दिया जायगा; चाहे वे अगले महीने की १५ ता० के भीतर ही आवें। सरस्वती यहाँ से दो बार अच्छी तरह जाँच कर रवाना की जाती है। अतएव इस विषय में पहले डाकघर से ही पूछताछ करना अच्छा होगा।

५—यदि एक ही दो मास के लिए पता बदलवाना हो तो डाकख़ाने से उसका प्रबन्ध करा लेना चाहिए और यदि सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिए।

६—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें और बदले के पत्र, सम्पादक "सरस्वती" जुही, कानपुर, के पते से भेजने चाहिएँ। मूल्य तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र "मैनेजर, सरस्वती, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद" के पते से आने चाहिएँ। ग्राहक-नम्बर लिखना न भूलिएगा।

७—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाश करने वा न करने का, तथा उसे लौटाने वा न लौटाने का अधिकार सम्पादक को है। लेखों के घटाने बढ़ाने का भी अधिकार सम्पादक को है। जो लेख सम्पादक लौटाना मंजूर कर उनका डाक और रजिस्टरी ख़र्च लेखक के ज़िम्मे होगा। बिना उसे भेजे लेख न लौटाया जायगा।

८—अधूरे लेख नहीं छापे जाते। स्थान के अनुसार लेख एक वा अधिक संख्याओं में प्रकाशित होते हैं।

९—इस पत्रिका में ऐसे राजनैतिक वा धर्म्म-सम्बन्धी लेख न छापे जायँगे जिनका सम्बन्ध वर्तमानकाल से होगा।

१०—जिन लेखों में चित्र रहेंगे, उन चित्रों के मिलने का जब तक लेखक प्रबन्ध न कर देंगे, तब तक वे लेख न छापे जायँगे। यदि चित्रों के प्राप्त करने में व्यय आवश्यक होगा तो उसे प्रकाशक देवेंगे।

११—यदि लेख पुरस्कार देने योग्य समझे जायँगे और यदि लेखक उसे लेना स्वीकार करेंगे, तो सरस्वती के नियमों के अनुसार पुरस्कार भी प्रसन्नता-पूर्वक दिया जायगा।

नई पुस्तकें ! नई पुस्तकें ! !

मनुष्य-विचार।

विचार ही उन्नति या अवनति का मूल है। विचार ही मनुष्य को उच्च वा अधम बनाता है। मनुष्य की बुरी भली अवस्था उसके विचारों के ही कारण होती है। मनुष्य के लिए उसके विचार ही सर्व-शक्तिमान् हैं। इन्हीं बातों का प्रतिपादन आधुनिक ऋषि जेम्स ऐलन ने अपनी 'As a man Thinketh' नामक पुस्तक में किया है। यह पुस्तक संसार में इतनी प्रसिद्ध है कि इसकी अनगिनती कापियाँ बिक चुकी हैं। इसी महत्त्वपूर्ण पुस्तक का यह हिन्दी-अनुवाद है। यह पुस्तक नहीं मनुष्यमात्र के लिए वरदान रूप है। इसके अनुसार चलने से मनुष्य का जीवन सुखमय तथा शांतिमय बन सकता है और वह अपनी बुरी वासनाओं को छोड़ कर अपना और दूसरों का बड़ा भारी उपकार कर सकता है। यह पुस्तक प्रत्येक पुरुष व स्त्री को पढ़नी चाहिए। मूल्य ≡) तीन आने।

अनाथ बालक।

श्रीयुत चन्द्रशेखर विद्याविनोद महोदय लिखित प्रसिद्ध बँगला गार्हस्थ्य उपन्यास का यह हिन्दी अनुवाद है। इस में एक सम्पन्न घराने के बालक की दीन-दशा, और फिर उसका अभ्युदय ऐसी ख़ूबी के साथ दिखलाया है कि पढ़ते ही बनता है। करुणारस का कहीं कहीं ऐसा सजीव चित्र खींचा गया है कि हज़ार प्रयत्न करने पर भी आँखों में आँसू आ ही जाते हैं। इसकी प्रशंसा स्वर्गीय पं० बंकिमचंद्र चटर्जी सरीखे प्रसिद्ध साहित्य-मर्मज्ञों ने की है। अनुवादक हैं हिन्दी-समाचार के भूतपूर्व सम्पादक पं० कात्यायनीदत्त त्रिवेदी। यह बढ़िया उपन्यास है। मूल्य केवल ॥।) बारह आने।

मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनुपम पुस्तकें ! अनुपम पुस्तकें !!

मानसिक आकर्षण द्वारा व्यापारिक सफलता

आकर्षण या सम्मोहन की शक्ति प्रत्येक मनुष्य में है लेकिन उसका उपयोग करना बहुत कम लोग जानते हैं। इसी शक्ति के चमत्कार-रूप हिपनाटिज़्म और मेस्मरिज़्म आदि हैं जिनसे लोग अनेक आश्चर्य-जनक काम कर दिखलाते हैं। अमरीका के लोग इस शक्ति का प्रयोग व्यापार तक में करके करोड़पती बन रहे हैं, क्योंकि इसका प्रयोग करने से सफलता अवश्यम्भावी है। श्रीमती ओ० हण्ण-हारा इस विषय में विशेषज्ञा हैं। इन्होंने एक पुस्तक में यह बतलाया है कि व्यापारिक सफलता के लिए मानसिक आकर्षण का किस प्रकार प्रयोग करना चाहिए। उसी का यह अनुवाद है। अनुवादक श्रीयुत संतराम बी० ए० हैं। यह विषय नवीन तथा चमत्कार-पूर्ण है। इस पर ध्यान देने से भारतवासियों को अमरीकनों का वह ढंग ज्ञात हो जायगा, जिसको हम लोग अब तक ईश्वर-प्रदत्त समझते रहे हैं। पुस्तक बड़ी ही मनोरञ्जक तथा चित्ताकर्षक है। मूल्य ≡) तीन आने।

विद्यासागर

अत्यन्त मनोहर जिल्द, छपाई, तथा १५ चित्रों के साथ बँगला की सब से प्रसिद्ध पुस्तक 'विद्यासागर' का यह अनुवाद-ग्रन्थ प्रस्तुत है। यह श्री चण्डीचरण वन्द्योपाध्याय-प्रणीत उसी ग्रन्थ-रत्न का अनुवाद है जिसकी जोड़ का जीवन-चरित इस समय भारत की किसी भी भाषा में नहीं मिलता। प्रातःस्मरणीय पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का यह चरित डिमाई साइज़ के ५८६ पृष्ठों में पूर्ण हुआ है। ग्रंथ इतना मनोरंजक और शिक्षाप्रद है कि शायद ही कोई पढ़ा लिखा बंगाल में ऐसा मिले जिसके यहाँ इसकी एक प्रति न मिले। यदि आप अपनी संतान को कर्मवीर, निर्भय, देशभक्त और जातिभक्त बनाना चाहते हैं तो इस पुस्तक से अच्छा साधन आपको दूसरा न मिलेगा। इसके अनुवादक हिन्दी-भाषा के प्रसिद्ध कवि वा लेखक पं० रूपनारायण पांडेय हैं। सर्वसाधारण के लाभ के लिए मूल्य इसका केवल ३) ही रक्खा गया है जो कि पुस्तक की उपयोगिता के सामने कुछ नहीं है। आशा है इस रत्न का आप अवश्य संचय करेंगे।

मिलने का पता—

मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

सरस्वती में विज्ञापन

यह तो आपको विदित ही है कि अब सरस्वती का प्रचार भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रान्तों में उत्तरोत्तर अधिकाधिक बढ़ता जाता है। भारतवर्ष का ऐसा कोई प्रतिष्ठित नगर नहीं जहाँ "सरस्वती" के अनेक ग्राहक न हों। यही नहीं, किन्तु लन्दन, अमरीका, अफ्रीका, फ़ीजी द्वीप आदि दूरदेशों में भी सरस्वती के उत्साही ग्राहक बढ़ते जाते हैं। यह हमारा अनुभव ठीक है कि एक एक ग्राहक के पास से सरस्वती ले लेकर पढ़ने वालों की संख्या आठ-आठ, दस-दस, तक पहुँच जाती है। ऐसी दशा में सरस्वती का प्रत्येक विज्ञापन प्रतिमास तीस-चालीस हज़ार सभ्य मनुष्यों के दृष्टिगोचर हो जाता है। इसलिए सरस्वती में विज्ञापन छपाने वालों को विशेष लाभ रहता है। सन् १९१३ ईसवी से तो सरस्वती का प्रचार और भी अधिक बढ़ रहा है।

आशा है कि आप भी "सरस्वती" में विज्ञापन छपा कर उससे लाभ उठाने का शीघ्र प्रयत्न करेंगे और बहुत जल्द विज्ञापन भेज कर एक बार अवश्य परीक्षा करके देख लेंगे।

छपाने के नियम ये हैं:—

१ पृष्ठ या	२ कालम की छपाई	... ...	१६) प्रतिमास
½ ,, या	१ ,,	,, ...	९) ,,
¼ ,, या	½ ,,	,, ...	५) ,,
⅛ ,, या	¼ ,,	,, ...	३) ,,

१—विज्ञापन बिना देखे छापने की स्वीकृति नहीं दी जाती।

२—एक कालम या इससे अधिक विज्ञापन छपानेवाले को सरस्वती बिना मूल्य भेजी जाती है। औरों को नहीं।

३—विज्ञापन की छपाई पेशगी देनी होगी।

४—साल भर के विज्ञापन की छपाई एक साथ पेशगी देनेवालों से ≈) फ़ी रुपया कम लिया जायगा।

५—सरस्वती का वार्षिक मूल्य ... ... ४)

नमूने की एक कापी का मूल्य ... ... ।≈)

पत्र-व्यवहार इस पते से कीजिए,

मैनेजर, सरस्वती,

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चित्रकला, संगीतविद्या और कविता, इनमें देखा जाय तो परस्पर बहुत ही लगाव मिलेगा। जैसे अच्छे कवि की कविता मन को मोह लेती है, अच्छे गवैये का संगीत हृदय को प्रफुल्लित कर देता है वैसेही चतुर चित्रकार का बनाया चित्र भी सहृदय को चित्र-लिखित सा बना देता है। बड़े बड़े लोगों के चित्रों को भी सदा अपने सामने रखना परम उपकारी होता है। ऐसे उत्तम चित्रों के संग्रह से अपने घर को, अपनी बैठक को सजाने की इच्छा किसे न होगी? अच्छे चित्रों को बनानेवाले ही एक तो कम मिलते हैं, और अगर एक आध खोज करने से मिला भी तो चित्र बनवाने में एक एक चित्र पर हज़ारों की लागत बैठ जाती है। इस कारण उन को बनवाना और उनसे अपने भवन को सुसज्जित करने की अभिलाषा पूर्ण करना हर एक के लिए असंभव है। हमारे यहाँ से प्रकाशित होने वाली सरस्वती मासिक पत्रिका में जैसे सुन्दर मनोहर चित्र निकलते हैं सो बतलाने की ज़रूरत नहीं है। हमने उन्हीं चित्रों में से उपयोगी उत्तम चुने हुए कुछ चित्र (बँधा कर रखने के लायक़) बड़े आकार में छपवाये हैं। चित्र सब नयनमनोहर, आठ आठ दस दस रंगों में सफ़ाई के साथ छपे हैं। एक बार हाथ में लेकर छोड़ने को जी नहीं चाहता। चित्रों के नाम, दाम और परिचय नीचे लिखा जाता है। शीघ्रता कीजिए, चित्र थोड़े ही छपे हैं—

शुक-शूद्रक-परिचय

(१४ रङ्गों में छपा हुआ)

आकार—२७½″ × १७″ दाम ३) रु०

संस्कृत कादम्बरी की कथा के आधार पर यह चित्र बना है। महा प्रतापी शूद्रक राजा की भारी भव्य सभा लगी हुई है। एक परम सुन्दरी चाण्डाल-कन्या राजा को अर्पण करने के लिए एक तोते का पिँजड़ा लेकर आती है। तोते का मनुष्य की वाणी में आशीर्वाद देना देख कर सारी सभा चकित हो जाती है। उसी समय का दृश्य इसमें दिखाया गया है।

शुक-शूद्रक-संवाद

(१४ रङ्गों में छपा हुआ)

आकार—३१″ × १८½″ दाम ३) रु०

संस्कृत कादम्बरी की कथा के आधार पर यह चित्र भी बना है। इस चित्र में राजमहल—अन्तःपुर का दृश्य बहु अच्छे ढङ्ग से दिखाया गया है। राजा शूद्रक लेटा है। रानियाँ बैठी हैं। मन्त्री भी उपस्थित है। चाण्डालकन्या के दिये हुए उसी तोते से राजा के बातचीत करने का सुन्दर दृश्य दिखाया गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu